प्रकाशक—चौधरी एण्ड सन्स,

बुक्सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स, बनारस सिटी।

लेखक—

रूपनगर की राजकुमारी, तरुणी, भक्त सूरदास, श्रवण-
कुमार, भक्त ध्रुव, शकुन्तला, चन्द्रावली,
हारमोनियम मास्टर आदि आदि
के रचयिता।

श्रीयुत पुरुषोत्तम राव "नायक" डबीर

प्रकाशक—

प्रथम संस्करण	सन् १९३०	मूल्य १)

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स,
लाजपतराय रोड
बनारस सिटी।

मैनेजर—शिवप्रसाद गुप्त,
अर्जुन प्रेस,
कबीरचौरा,
बनारस।

* ओ३म् *

बाजीराव पेशवा ।

१

परिचय ।

भारतवर्ष का (दाक्षिणात्य विभाग) दक्षिण देश महाराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध है. पूर्व की तरफ गौण्डावन और तैलँग देश, पश्चिम की ओर अरब समुद्र, उत्तर में सूरत और सतपूरा पर्वत, दक्षिण में कृष्णा और मौलिप्रभा नामक पार्वतीय नदी विद्यमान है। यह देश लगभग एक लाख पचीस हजार वर्ग मील है, वहाँ की जन-संख्या दो-ढाई करोड़ है। विशेष कर इस देश का भूभाग पार्वतीय और ऊसर होने के कारण यहाँ के मनुष्य अन्य स्थानों के मनुष्यों को अपेक्षा दृढ़काय परिश्रमी और अधिक बलशाली होते हैं। इस देश का जल-

वायु भी भारत के अन्य प्रान्तों के जलवायु से अधिक लाभप्रद है।

पर्वत श्रेणी अथवा पश्चिम घाटी नामक पर्वत ने उत्तरांश दक्षिण (महाराष्ट्र) देश को दो भागों में विभक्त कर दिया है, एक पूर्व और दूसरा पश्चिम। पश्चिम घाटी का पूर्वांश कोङ्कण नाम से विख्यात है, और कोङ्कण के उत्तराञ्चल में "जंजीरा" नाम का एक छोटा सा द्वीप है।

इस कोङ्कण प्रदेश के एक ओर भयंकर नादकारी अरब समुद्र और ऊपर दिशाओं में दिगन्त पर्वत, कालस्वरूप तुल्य विराजमान हैं। इस प्रदेश का विस्तार प्रायः चार सौ मील है, परन्तु जन-संख्या का निवास सौ मील के अन्तर्गत ही में है। इस प्रदेश की अधिकांश भूमि अरण्य श्रेणी से आच्छादित है। इसी कारण यहाँ के निवासीगण अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं। अधिवासी बहुत परिश्रमी सरल स्वभाव, शान्त चित्त और थोड़े ही में सन्तुष्ट होते हैं। वे अन्य प्रान्तों के जनों की भाँति छली, कपटी तथा दूसरे का माल अपहरण करने वाले नहीं, वरन दूसरे को दुःखी देख कर स्वयम् दुःखी होते हैं, तन-मन-धन से उनकी सहायता करना ही उनका ध्येय है।

"जंजीरा" द्वीप वर्तमान समय में 'कूलावा' जिले के आधीन है। ब्रिटिश राज्य-स्थापन के पूर्व यह द्वीप और इसके चतुर्दिक के देश हबसियों के आधीन थे। यहाँ रहने वाले हबसी 'सिद्धी' और उनकी भूमि 'हबिसियान' प्रसिद्ध हैं।

हबसियान देश ३२५ वर्ग मील का है और आज कल इसकी वार्षिक आय तीन लाख रुपया है। राजधानी 'जंजीरा' में इस समय भारत सरकार की ओर से एक अंग्रेज एजेण्ट निगरानी के लिए नियुक्त है।

जंजीरा के बारह मील दक्षिण में वाणकोट सागर के उत्तर तट पर सावित्री नदी के निकट 'श्रीवर्द्धनपट्ट' नाम का एक छोटा सा ग्राम है। इस ग्राम में रहने वालों की संख्या प्रायः साढ़े तीन हज़ार है। उनमें प्रायः बहुत से वेद-वेदांगी शुद्ध चित्त ब्राह्मण भी हैं। अन्यान्य स्थानों की भाँति इस ग्राम में भी आम, कटहल, नीबू, अमरूद, नारियल, कदली, सुपारी इत्यादि अनेकानेक वृक्ष शोभायमान हैं। विशेषतः यहाँ की सुपारी बढ़िया होने के कारण लोग उसे आदर के साथ व्यवहार में लाते हैं। यहीं तक नहीं वरन् महाराष्ट्र देश में सर्वत्र इस सुपारी की खपत है। पूर्व समय में यह नगर वाणिज्य व्यवसाय के लिये प्रधान था।

श्रीवर्द्धनपट्ट में लगभग दो सौ वर्ष पूर्व एक महाराष्ट्र ब्राह्मण गर्गगोत्रोत्पन्न 'विश्वनाथ' भट्ट निवास करते थे। इनके पिता का नाम जनार्दन भट्ट था। वह जंजीराबाद के सिद्धि सर्दार की आधीनता में श्री बर्द्धन परगना की देख रेख करते थे और विश्वनाथ भट्ट परगना की तहसीलदारी का काम करते थे तथा जमाबन्दी कार्य का निरीक्षण भार भी उन्हीं पर था।

उस कठिन काल में राजा रजवाड़ों में एक अच्छे उच्च पद पर आरूढ़ होना भयप्रद ही था, कारण नेता के बिगड़ जाने पर उधर जब उसका पक्ष अवलम्बन करते तब उसको प्रतिवादी का देश स्वाधीन करने में देर ही क्या होती ! अहंकारी नेताओं के विरोधी होने पर, राजाओं को कर वसूल करना अथवा प्रजा पर शासन करना असम्भव हो जाता

बिश्वनाथ भट्ट के हाथ में नेता तथा तहसीलदारी का काम होने से देश में उनका विशेष मान सम्मान तथा प्रभुत्व जमा हुआ था और साथही साथ महाराष्ट्र राजनीति व्यापार में कतिपय सम्बन्ध था इसका अनुमान पाठक स्वयम् ही करलें ।

विश्वनाथ भट्ट नियमानुसार अपना कार्य दत्तचित्त हो पूरा करते थे, उनका समय बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था । एक दिवस अपने चारो पुत्रों को इस लोक में छोड़ बिश्व-नाथभट्ट परलोकवासी होगये । इनके तृतीयपुत्र 'जानोजी' ने अपने प्रपिता (दादा) का नाम अर्थात् जनार्दन भट्ट ग्रहण किया और पैतृकपद का अधिकार प्राप्त कर वे श्रीवर्द्धनपट्ट में रह कर देख-रेख का कार्य करने लगे । इनके कनिष्ठ भ्राता 'बालाजी' की प्रकृति कुछ और ही थी। वे बहुत परिश्रमी जीव थे। उन्होंने पैतृक सम्पत्ति के ऊपर निर्भर होकर तथा ज्येष्ठ भ्राता केआधीन रहकर जीवन व्यतीत करना पसन्द नहीं किया वरन् स्वतन्त्ररूप से अर्थोपार्जन का मार्ग अवलम्बन किया ।

इस प्रकार अपनी विचारशैली को एक स्थान पर लक्षित कर कुछ दिवस पूर्व सिद्धीगणों की आधीनता में चिपलून ताल्लुके का कर वसूल करने का भार अपने ऊपर लिया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'मीठबन्दर' नामक स्थान के लवण के व्यापार का भी ठीका लेकर उन्हें स्वाधीन कर लिया।

इन्हीं कारणों से बालाजी को प्रायः चिपलून जिले में ही अपना निवासस्थान बनाना पड़ा। इसी वीर पुरुष ने अन्त में "बालाजी विश्वनाथपेशवा" पद प्राप्त कर भारत के इतिहास में अपना नाम अङ्कित कर दिया। दक्षिण देश में अपने नाम के साथ ही साथ पितृ नाम संयोग करने की प्रणाली प्रचलित रहने से बालाजीके नाम के साथ इनके पिता 'विश्वनाथ' का नाम भी प्रायः अङ्कित किया जाता है। बालाजी विश्वनाथ पन्त नाम से विख्यात थे।

बालाजी विश्वनाथपन्त दूरदर्शी, वीर, तथा साहसी पुरुष थे। इनकी गुणवती पतिव्रता भार्या 'राधा वांग बाई' भी इन्हीं के समान चतुरा, दूरदर्शिता और साहसी स्त्री थीं। कभी कभी बालाजी अपनी भार्या 'राधा वांग बाई'से किसी कार्य में परामर्श भी करते थे और पर्याप्त उत्तर पाकर सन्तुष्ट होते थे।

——:*:——

२

पुत्र प्राप्ति विपत्ति और अधिकार लाभ
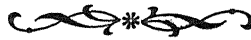
सन् १६९९ खृष्टाब्द में भारत रमणी राधा बाई के गर्भ से पुस्तक के नायक वीर शिरोमणि बाजीराव बल्लाल का जन्म हुआ। इस सुसंबाद को सुन कर बालाजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। प्राय: यह देखने में आता है कि बाल्य जीवन के संकट भविष्य जीवन के महत्व को प्रकट कर देते हैं। बाजीराव के जीवन में भी इस दैवी बार का व्यक्ति क्रम नहीं हुआ। बाल्यावस्था में ही बाजीराव को विपत्तिसागर की विषम लहरों की थपेड़ें खानी पड़ी थीं। शिशु के सम्मुख भविष्यक संकट की घण्टी बार बार बजती थी।

चौथे बर्ष में पदार्पण करते ही बाजीराव को पिता के साथ अपनो प्यारी जन्म भूमि का परित्याग कर भागना पड़ा। केवल इतने से ही दुर्दैबी दैव शांत होगया ऐसा नहीं। शिशु के भाग्यपर अङ्कित हुई दु:ख की लकीरें और भी बाकी थीं उसे संसार में आने का सुख प्राप्त करना था, अत: भागने के उपलक्ष्य में शिशु बाजीराव को कारावास में अपना गृह नियत

करना पड़ा था—कालकी अघटित घटना के बन्धन में बँध कर पराधीन होना पड़ा था।

बाजीराव के जीवन में यह प्रथम घटना घटी। परन्तु वीर शिशु बाजीराव माता के उपदेश द्वारा शिशु अवस्था में ही एक कट्टर तरुण बनाया जाचुका था। राधा वांग बाई के किस्से और कहानियों ने उस बालक के कोमल हृदय को स्वाभिमानी बना दिया था। अस्तु !

इस समय जञ्जीरा देश का आधिपत्य कासिमखाँ के हाथ में था। उसकी वीरता—शूरता से प्रसन्न होकर मुगल-सम्राट् औरंगजेब ने उसे मुगलबाहिनी का अधिष्ठाता नियुक्त, कर दिया था। कासिमखाँ एक उच्चासन पर आरूढ़ हो कर मन माना अत्याचार करने लगा छत्रपति वीरकेशरी शिवाजी माहाराज के समय से ही कासिमखां महाराष्ट्रों का अहंकार चूर्ण करने का प्रयत्न करता आता था और महाराष्ट्र सेनापतियों के साथ प्राय: उसका विघटित युद्ध भी हुआ करता था। हिन्दू प्रजा उसके अत्याचार से त्राहि त्राहि कर रही थी। एक पल भी सुख शांति पूर्वक बैठे रहना उनके लिये कठिन होगया था।

जिस समय का यह वृतान्त है उस समय समुद्रवर्तीय स्थानों का अधिकार लेकर छोटे छोटे जहाजों के आधिनायक "कान्होंजी" अंग्रे के साथ सिद्धियों की शत्रुता का श्रीगणेशाय नम: आरम्भ हो रहा था।

जिस समय शिशु बाजीराव तातली वाणी से अपने सहचर शिशु मण्डली के साथ बाल्यक्रीड़ा का आनन्द लाभ कर रहे थे उसी काल में कान्होंजी आंग्रे और सिद्धि कासिमखां का वादाविवाद प्रचण्ड अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा। कासिमखाँ कान्होंजी पर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था और कान्होंजी सिद्ध कर्मचारियों को द्रव्य द्वारा वशीभूत कर अपनी मण्डली में मिला लेने का प्रयत्न कर रहे थे। दोनों चतुर प्रहारी अपनी अपनी ताक में लगे थे।

जब कि दो सिंह धीरे-धीरे अपनी चाल से आगे बढ़ रहे थे बालाजी ने स्वजातीय मंगल के लिए गुप्त रीति से कान्होंजी आंग्रे का पक्ष अवलम्बन कर उन्हें सहायता देना निश्चय किया। इस समाचार को जब सिद्धि कासिमखां ने सुना वह आग बबूला हो गया। उसने ब्राह्मण केतु को पूर्ण रीति से रसातल भेजने का बिचार अपने हृदय में दृढ़ कर लिया, सिर्फ बिचार ही नहीं वरन् उस दुर्धर्ष कासिम ने श्री वर्द्धनपट्ट के भट्टवंश को सपरिवार गिरफ्तार करने की आज्ञा दे दी!

कासिम की आज्ञा पाकर उसके सहकारी लोग बेचारे भट्टवंश के परिवार को पकड़ने के लिए चल पड़े। सर्व प्रथम बालाजी के ज्येष्ठ भ्राता जनार्दनजी कासिम के सम्मुख बन्दी बना कर उपस्थित किये गए, प्रचण्ड पापी अत्याचारी कासिमखाँ ने बिना किसी प्रकार का परामर्श तथा बिचार

किये ही निर्दोषी ब्राह्मण को इस लोक से उठा देने की भीषण आज्ञा दी। जनार्दनजी के इष्ट मित्र प्राण दण्ड की आज्ञा सुन कर कॉंप उठे। उनकी आंखों से आँसुओं की अविरल धारा बह उठी, परन्तु व्यर्थ, उस करुण जल-धारा का प्रभाव कासिम ऐसे नरपिशाच पर हो, यह असम्भव था। अस्तु १७०१ ई० को विप्रकुल केतु जनार्दन जी हाथ पाँव बंधे एक सन्दूक में बन्द कर जीते जी माहासागर के गर्भ में सदा के लिये बन्दी बना दिये गये, पापी कुलाङ्गार कासिम राक्षस ने उस सन्दूक को समुद्र में डुबो दिया। हतभाग्य जनार्दनजी के प्राणपखेरु शरीररूपी पिंजड़े से बाहर निकलने के लिये कितना छटपटाता होगा? त्राहि! त्राहि!!

इस भीषण अत्याचार से अत्यन्त भयभीत हो बालाजी विश्वनाथ अपनी और बंश की मर्यादा रखने के हेतु अत्याचारी सिद्दियों की भूमि परित्याग कर सपरिवार बागकोटके दक्षिण भाग 'बयलास' ग्राम में जा उपस्थित हुए।

पवित्र भूमि बयलास ग्राम में 'हरि-महादेव' भानू नामक एक सद्गुणी सज्जन द्विज रहते थे। पूर्व से ही हरि-महादेव भानू के साथ बालाजी की मित्रता थी। बालाजी विश्वनाथ ने उनसे मिल कर अपने-भविष्य के सम्बन्ध में परामर्श करके यह निश्चित किया कि कोङ्कण परित्यागकर सपरिवार किसी अन्य स्थानमें जाकर नूतन व्यापार में प्रविष्ट होना ही उत्तम और सुख शान्ति दायक है।

धर्माधिकारी 'हरि–महादेव' भानू की पारिवारिक स्थिति अच्छी न थी। इस लिए उन्होंने भी सपरिवार बालाजी बिश्वनाथ के साथ परदेश गमन करने का निश्चय किया। दो तीन दिवस के अनन्तर दोनों कुटुम्बियों ने विदेश यात्रा आरम्भ कर दी।

भानूजी और बालाजी बिश्वनाथ ने सपरिवार आनन्द के साथ थोड़ा सा ही मार्ग व्यतीत किया होगा कि इतने में पुनः उनके मस्तक पर दुःख के बादल मडराने लगे, अत्याचारी कासिमखाँ की निर्दयी सेना ने दोनों विप्र महाशयों को सपरिवार गिरफ्तार कर लिया और 'अञ्जनबेल' नामक दुर्ग में बन्दी बना कर भेज दिया।

'अञ्जलबेलदुर्ग' में दोनों कुटम्बियों का दुर्गेश सिद्धी के आदेशानुसार २५ दिवस तक महान् यन्त्रणायें भोगनी पड़ी थीं। इतनी असह्य यन्त्रणायें भोगते हुए भी हरिमहादेव भानू ने बुद्धि और साहस को विदा नहीं किया था। उनके मस्तिष्क में दिन रात इस कठिन कारागार से मुक्त हाने की विचार-धारा प्रवाहित थी। वे बालाजी तथा भ्राताओं से इसी सम्बन्ध का विचार करते थे।

एक दिन हरिमहादेव और इनके भ्राताओं ने अत्यन्त परिश्रम और बुद्धिचातुर्य्य से अञ्जलदुर्ग के किलेदार को वशीभूत कर इस कठिन कारावास से मुक्ति लाभ किया। इन्हीं असाधारण बुद्धिवान विप्रों के बुद्धिबल से बालाजी विश्वनाथ

सपरिवार इस महान कठिन दुर्ग से बाहर होकर सकुशल 'सास-वाड़' में पहुँच पाये थे।

दुर्ग से बाहर निकल कर हरि-महादेव भानू और बालाजी ने सीधे पूना का मार्ग अवलम्बन किया और 'सासवाड़' ग्राम के एक सभ्य सज्जन विप्र आवाजीपन्त पुरन्दरे का आश्रय ग्रहण किया। आवाजीपन्त पुरन्दरे तात्कालिन महाराष्ट्र देश की राज-धानी 'सितारा' नगर में इन लोगों को साथ लेकर चले गये।

इस समय देश की अवस्था अत्यंत शोचनीय थी, जहाँ तहाँ उपद्रवियोंका ताँता सा लगाथा। पूर्व महाराष्ट्रमें तो विप्लवके बादल के बादल छा रहे थे। पग पग पर युद्धधादिकों के शब्द कर्णगोचर होरहे थे। प्रजावर्ग अशान्ति के सागर में बार बार गोते लगा रही थी।

वीर केशरी महाराज छत्रपति शिवाजी के परलोक गमन के पश्चात् मुगल सम्राट् क्रूर औरंगजेब ने टिड्डीदल की भाँति सेना लेकर महाराष्ट्र प्रदेश पर चढ़ाई किया था वीर शिरोमणि शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी ने इन हिंसक टिड्डियोंको रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न किया-मुगल सैन्य को अपनी वीरता का परिचय दिया। परन्तु व्यर्थ। असंख्य सैन्यके सम्मुख 'हरहर महा-देव के नादकरने वाले' मुट्ठी भर महाराष्ट्र वीरविजय जयमाल पहन न सके। दस, दस, पन्द्रह, पन्द्रह यवनों को धराशाई कर स्वयं भी माता वसुन्धरा पर अपना शरीर न्योछावर करने लगे। कुछ एक काल में उन्होंने अपनी प्यारी जन्म भूमि को पराधीनता की

बेड़ी से मुक्त करने के लिये हँसते हँसते प्राण विसर्जन कर दिया। दैव की इच्छा प्रतिकूल होने के कारण वीर शम्भूजी अचानक मुगलों के हाथ पकड़े गये और मुगलों की आधीनता न स्वीकार करने के उपलक्ष्य में उन्हें अपने प्रिय प्राणों की आहुती देनी पड़ी, नराधम औरंगजेब राक्षस ने स्वतन्त्रता की ज़ञ्जीर में बँधने वाले महाराष्ट्र प्रदेश के सिंह को तलवार के घाट उतार दिया। उनकी पतिव्रता अर्धाङ्गिणी 'यशोदावंग बाई, और पुत्र कुमार शाहूजी मुगल सम्राट् के नज़रबन्दी हुए।

इस घटना के कुछ एक दिन पश्चात् महाराज शिवाजी के छोटे पुत्र, शम्भाजी के कनिष्ठ भ्राता महाराजा 'राजाराम' पिता के सिंहासन पर सुशोभित हो भ्रातृहन्ता अहंकारी औरंगजेब से बदला लेने के लिये कठिबद्ध हुए। परन्तु उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी। उन्हें इस लोक से उठा ले जाने के लिये स्वर्ग से विमान चल चुका था। अत: १७०० ई० में उनका परलोकवास होगया।

महाराजा राजाराम के परलोकवास हो जाने पर उनकी भार्य्या 'महाराणी' तारा वांग बाई ने महाराष्ट्र देश के शासन कीडोर अपने हस्तगत की।

इधर सम्राट औरंगजेब ने अनुमान से यह निश्चय कर लिया कि महाराजा राजाराम के स्वर्गवासी होने से मराठे वीर भयभीत होकर हताश हो जाँयगे और शान्ति स्वरूप धारण कर चुप बैठेंगे। औरंगजेब के मस्तिष्क की यह बड़ी भारी

भूल हुई जो ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। महाराष्ट्र वीरगण उद्भ्रान्त नहीं हुए। वीराङ्गणा महामाया तेजस्वी तारेश्वरी के वीरोचित उत्तेजना पूर्ण भाषण से मराठे वीर क्रुद्ध सर्प की भाँति फुँफकार कर उठ खड़े हुए और वीरोन्मत्त हो द्विगुण उत्साह से नीच औरंगजेब को ससैन्य महाराष्ट्र भूमि से एक बारगी विताड़ित करने में अग्रसर हुए। सारे महाराष्ट्र प्रदेश में महाराणी तारा के उत्तेजना पूर्ण भाषण ने आग सुलगा दी, उस अग्नि की ज्वाला से तपित होकर महाराष्ट्र वीर अस्त्र शस्त्र सहित युद्ध भूमि में आडटे और तलवार के वार के साथ ही साथ आँख से अग्नि की ज्वाला फेंकते हुए औरंगजेब का मद-मर्दन करने लगे।

उस समय महाराष्ट्र वीरगण किसी भाँति भी एक अश्व और तेजस्वी चन्द्र के समान चमकता हुआ भाला यदि कर तल में कर पाता तो वही भागते हुए मुगल सैन्य सिपाहियों का पीछा कर उसे दूसरी दुनियां में जाने की अनुमति दे देता "हरहर महादेव" के गगनभेदी नाद से क्षुद्र यवनों का हृदय काँप उठता था और ध्वनि के साथ ही साथ दिग् दिगन्त से प्रतिध्वनि होने लगती थी। रण—चण्डी तारेश्वरी के चक्षुओं की भयंकर अग्निज्वाला से, मुगल सैन्यगण भस्मीभूत होने लगे थे—हाहाकार मच गया था। अपने पति, और पति के ज्येष्ठ भ्राता का बदला एवं देश को स्वाधीन करना ही उस वीर भारत-रमणी का एक मात्र लक्ष्य था।

जिस समय बालाजी विश्वनाथ 'सासवाड़े' में पहुँचे उस समय तारा बांग बाई के रक्षक रामचन्द्र पन्त, शंकर जी नारायण और सैन्य अधिष्ठाता धनाननजी यादव आदि महाराष्ट्र वीरों के तेज से समग्र दक्षिण प्रान्त भयभीत हो रहा था। विधर्मी मुग़ल महाराष्ट्र वीरों का रौद्ररूप देख कर पराजित हो इधर उधर बगल झाँकने लगे। जिन जिन देशों को मुगल सम्राट औरंगजेब ने अत्याचार की हद कर आधीन किया था अपने भीषण चमचमाते हुए भालों के द्वारा महाराष्ट्र वीरों ने उन प्रदेशों को हस्तगत कर लिया।

ऐसे समय में बुद्धिवान वीर, दूरदर्शी व्यक्ति की विशेष रूप से आवश्यकता थी। वहाँ उसके लिए कार्य तथा पद का अभाव न था। बालाजी बिश्वनाथ उद्यमशील और चतुर व्यक्ति थे, वे इस मौके को कब छोड़ने वाले थे। सितारा नगर में पहुँचते ही वे राजकार्य में प्रविष्ट हो गये।

राजधानी सितारा में पहुंचते ही बालाजी विश्वनाथ ने महादेव कृष्ण जोशी नामक एक विप्र सज्जन से अपनी मनो-वांछा प्रकट की और जोशीजी के प्रयत्न से, महाराणी तारा बांग बाई के प्रतिनिधि परशुराम त्रियम्बक की कृपा से मालगुज़ारी का कार्य बालाजी विश्वनाथ तथा उनके सहचरों को प्राप्त हुआ।

बालाजी विश्वनाथ तथा अम्बाजी थोड़े ही काल में अपने

कार्य की दक्षता दिखाकर राज-प्रतिनिधि महाशय के विश्वास पात्र बन गये। प्रतिनिधि महोदय ने इन दो व्यक्तियों की कार्यदक्षता देख कर सैन्य अधिष्ठाता धनाननजी यादव की आधीनता में राजस्व विभाग के 'कारकुन' पद पर सौ मुद्रा वार्षिक वेतन पर इन्हें नियुक्त कर दिया।

इसके पश्चात् स० १७०६ ई० में हरिमहादेव भानू के कनिष्ठ भ्राता रामा जी महादेव शंकर जी नारायण की कृपा द्वारा उन्हीं के निकट लेखक के काम पर नियुक्त हुए। शेष भ्राता बालाजी विश्वनाथ के निकट ही रहने लगे।

इस प्रकार विपत्ति, संकट, स्वदेश परित्याग का दुःख झेलते हुए बालाजी विश्वनाथ अपने ध्येय पर जा पहुँचे।

३

(बाल्य शिक्षा रणकौशल, पितृवियोग)

विपत्ति के बादलों का समूह पर्याप्त छिन्न भिन्न हो जाने पर राजधानी सितारा में शिशु बाजीराव का पठन पाठन आरम्भ हुआ। बालाजी विश्वनाथ कारकुन के होनहार पुत्र ने अल्प समय में ही विद्याध्ययन कर दक्षता लाभ कर ली। वर्तमान समय की केवल पठन पाठन प्रणाली में दक्षता हो जाने पर उस समय छात्र इस कार्य से मुक्त हो जाता था, ऐसा नहीं। उसे लिखने पढ़ने के साथ ही साथ शारीरिक और मानसिक विद्या का भी पाठ करना पड़ता था।

प्राचीन समय के वीर और बुद्धिवान लोग मानसिक विकास की अपेक्षा शारीरिक शक्ति की ओर विशेष रूप से ध्यान देते थे। वे अपने पुत्र पुत्रियों का मानसिक शिक्षा से कहीं अधिक शारीरिक शील का ध्यान रखते थे। और वीर बनाने की चेष्टा किया करते थे। विशेष कर इसका भ्राता के ही ऊपर रहता है। रात्रि हो जाने पर माता उन्हें वीरों की

कहानियाँ सुनाया करती थीं। कहानी सुनते सुनते बालक सो जाता था। जिसके प्रभाव से छत्रपति शिवाजी, बाजीराव पेशवा इत्यादि अनेक वीरगणों ने हिन्दू धर्म की मर्यादा रख उसे जीवित रखा। पुस्तकीय विद्या कण्ठाग्र कर डिग्री (उपाधि) प्राप्त करने की अपेक्षा सिंहोचित वीरपद प्राप्त करना, उस समय राजघराने के कुमारों को अधिक प्रशंसनीय था। विशेष क्या जिस समय बाजीराव का जन्म हुआ था, उस समय देश में वीरत्व की महत्वता प्रसरित हो रही थी। इसी विशेष कारण के लिए बालाजी ने अपने पुत्र को पुस्तकीय विद्या के साथ ही साथ घोड़े पर चढ़ना, तलवार चलाना, भाला चलाना, लच्छ भेद करना, तैरना, सैन्य चक्र व्यूह में प्रविष्ट होकर निकल आना इत्यादि अनेक विद्या में पारगत बना दिया था। कभी कभी वे अपने पुत्र की परीक्षा भी ले लिया करते थे।

राजधानी सितारा में आकर राज्यकर्म में प्रविष्ट होने के समय से बालाजी को अपना समस्त जीवन युद्ध करने में ही व्यतीत करना पड़ा था। पुत्र को पूर्ण रीति से वीर शिरोमणि बनाने की उत्कट अभिलाषा से प्रायः वे सभी युद्ध में अपने साथ ले जाते थे और रण-भूमि में वीरों के शक्ति-शाली बाहु से संचालित कृपाण और भालों के भरपूर वीर को दिखा कर उसे युद्ध विद्या में पण्डित बनाते थे। इसका परिणाम स्वरूप यह हुआ कि अल्प समय में ही बाजीराव समर शास्त्र में भिज्ञ हो गये और साथ ही साथ उनमें वीरता, शूरता तथा साहस का

संचार होने लगा समर-भूमि में चमचमाती हुई तलवार के प्रहार का 'खटाखट' शब्द, घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिग्घाड़ और गगनभेदी रण बाँकरों की ललकार-घोरनाद का श्रवण करते करते बाजीराव का हृदय पाषाण की भाँति कठोर हो गया था।

इस प्रकार इधर तो पिता जी के साथ राज सभा में जाना और देश-देशान्तर में भ्रमण का सुयोग प्राप्त करना, इन अवसरों ने महाराष्ट्र कुल दीपक बाजीराव को सकल विषय की शिक्षा अनायास में ही प्राप्त करा दिया। भारत-वीर ने अल्प समय में ही सकल समर शास्त्र का अध्ययन कर दिया।

जिस समय बालाजी धनाननजी की कृपा द्वारा कारकुन पद पर नियुक्त किये गये थे, उस समय अपने प्राणों की ममता छोड़ कर समस्त वीरों ने 'हरहर महादेव' के हृदय विदूर्ण भयंकर नाद से मुगल सम्राट औरंगजेब का सिंहासन हिला दिया। प्रचण्ड सागर की भांति महाराष्ट्रीय सैन्य एवम् गगनभेदी सिंहनाद से उसका हृदय काँप उठा। रण- बांकुरे माहाराष्ट्रों के प्रचण्ड आक्रम से नितान्त व्यस्त धस्त हो कर, विवश हो औरंगजेब को स्वर्गबासी शम्भाजी के चिरंजीव 'शाहू' जी को बन्धन से मुक्त कर देना पड़। केवल इतने से ही कार्य समाप्त नहीं हुआ, महाराष्ट्र वीरों को शान्त करने के उपलक्ष में समस्त राजस्व का दशमांश 'स्वत्व' की सनद भी उसे देना पड़ा था।

शाहूजी के स्वदेश में प्रविष्ट होते ही राज्याधिकार प्राप्ति के अर्थ माता ताराबांगबाई और पुत्र शाहू का युध्द आरम्भ हुआ। प्रधान सेनापति धनाननजी ने शाहूजी को राज्य का पूर्ण उत्तराधिकारी समझ कर उन्हें राज्य प्राप्त करने में सहायता देने का निश्चय किया। फिर क्या था स० १७०७ ई० में महाराणी तारेश्वरी को राज्य का शासन डोर शाहू जी के हाथ में देना पड़ा, धनानन आदि बीरों की विपक्षता से सहज ही में उनकी पराजय होगई।

महाराष्ट्र राज्य में क्षण-क्षण में जो विप्लव के बादल उठ रहे थे वे महाराज शाहू के सिंहासनारूढ़ होते ही कतिकांश शान्त होगये।

इधर धीरे २ बालाजी विश्वनाथ को राजस्व विभाग में अपनी योग्यता प्रगट करने का अवसर प्राप्त होने लगा। दूर-दर्शी महाराष्ट्र अपने चातुर्य द्वारा एक एक पद प्राप्त करने लगा। उनमें असीम कार्य कुशलता होने के कारण उन्हें राजस्व का विशेष कारबार देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने कृषकों को उत्साहित कर, सर्व प्रकार से उनकी सहायता कर उन्हें उन्नति के मार्ग का दिग्दर्शन कराया और साथ ही साथ राज्य के मालगुजारी की भी बृद्धि की।

प्रधान सेनापति धनाननजी यादव बालाजी विश्वनाथपन्त की कार्य कुशलता का परिचय पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और हितचिन्तक होगये। तमाम पदाधिकारी गण बालाजी को

एक उच्च-सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। महाराज शाहू भी इनकी कार्य-तत्परता से अपरिचित न थे।

कृषकगण उन्नति का पथ प्रदर्शित करने वाले बालाजी को देवता समान मानते थे तथा नियमित समय पर मालगुजारी पहुँचा देते थे। उन्हें कृषकों पर मालगुजारी वसूल करने के लिये किसी दण्ड की आवश्यकता नहीं होती थी। जनता उन पर प्राण न्योछावर करने के लिये भी कटिबद्ध रहती थी। अस्तु!

महाराज शाहूजी का दयार्द्र भाव होने से बालाजी को अनेक बार उनके सम्मुख उपस्थित होने का सुअवसर प्राप्त होता था और ऐसे अवसर पर बालाजी अपनी योग्यता का परिचय भी देते थे।

स० १७१० ई० के जून मास में महाराज शाहू के प्रधान सेनापति–महाराष्ट्र राजस्व के हितचिन्तक वीर धनाननजी यादव का स्वर्गवास होगया। इस वीर पुरुष की मृत्यु से महाराष्ट्र देश शोकातुर हो उठा। महाराज शाहू इस वज्रा-पात से–अधीर हो उठे। परन्तु बालाजी का स्मरण आते ही उनका हृदय कुछ शान्त हुआ और उन्होंने तत्काल बालाजी विश्वनाथ पन्त को समस्त राजस्व विभाग के आय का भार सौंप दिया। धनानन जी के पुत्र चन्द्रसेन राव के अधिकार में केवल सैन्य विभाग का भार दिया गया। अब बालाजी के ऊपर सेनापति चन्द्रसेनराव का कुछ प्रभुत्व न रहा।

इस लिये चन्द्रसेन राव के हृदय में बालाजी विश्वनाथ पन्त के प्रति प्रति—हिंसा—की अग्नि प्रज्वलित हुई। बालाजी को देखते ही उनका शरीर क्रोध से लाल हो उठता था और वे इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए अवसर ढूँढने लगे।

इस प्रकार चन्द्रसेन राव का क्रोध बालाजी पर दिनों दिन बढ़ता ही जाता था। वे अवसर का अनुसन्धान कर ही रहे थे कि १७११ ई० में एक दिन आखेट करते समय अकस्मात् बालाजी के किसी सिपाही द्वारा चन्द्रसेन राव का भृत्य घायल हो गया। चन्द्रसेन राव अवसर का अनुसन्धान तो कर ही रहे थे, इस उपयुक्त अवसर को पाकर बालाजी से प्रतिशोध लेने के लिए उन्होंने सहसा ससैन्य बालाजी पर आक्रमण किया !!

जिस समय चन्द्रसेन राव ने ससैन्य बालाजी पर आक्रमण किया था उस समय बालाजी अपने कुटुम्बियोंके साथ सांसारिक विषय पर गोष्ठी करते जा रहे थे। इस आकस्मिक घटना के विघटित होने से पहले तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु शीघ्र ही इसका कारण समझ लिया। उस समय उनके साथ उनके कुटुम्बी—ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव, कनिष्ठ चिमणाजी आप्पाजी, भ्राता अम्बाजी पन्त और कुछ इने गिने वीर योद्धा थे।

बालाजी ने बढ़ती दरिया के समान चन्द्रसेनराव की सेना

को अपनी तरफ आते देख पलायन करने का ही उपाय अवलम्बन किया और वे सहचरों सहित 'सासवाड़' नगर के पुरन्दर नामक दुर्ग में जा उपस्थित हुए। परन्तु दैव के कोप से उन्हें यहाँ आश्रय प्राप्त न हो सका। दुर्ग के प्रधान नायक ने अपनी इच्छा होते हुए भी सेनापति चन्द्र-सेन राव के भय से किले में स्थान नहीं दिया। इतने समय में चन्द्रसेन राव की सेना सन्निकट आ पहुँची परन्तु बालाजी घबराये नहीं। इस विकट समस्या को हल करने में महाराष्ट्र वीर बालाजी का मस्तिष्क शिथिल न था। उन्होंने तत्क्षण एक और उपाय सोच निकाला और सहचरों के साथ उसी ओर चल पड़े।

सेनापति की सेना से घबड़ा कर बालाजी स्थानार्थ-गिरी दुर्ग की ओर बढ़े। मार्ग में इन लोगों ने अत्यन्त चेष्टा से चार पाँच सौ युद्ध विशारद वीरों को अपने पक्ष में मिलाया और उन्हें साथ लेकर बालाजी बिश्वनाथ पन्त 'निरा' नदी के तट पर सेनापति चन्द्रसेन राव के सम्मुख जा डटे। दोनों दलों में युद्ध आरम्भ होगया। मुट्ठी भर वीरों ने भली भाँति अपनी वीरता का परिचय दिया। भट्ट वंश के वीर बालाजी ने एक बार तो अवश्य चन्द्रसेन के दाँत खट्टे कर दिये।

परंतु थोड़े समयमें ही बालाजीको रणभूमि छोड़कर भागना पड़ा क्योंकि चन्द्रसेन राव के असंख्य वीरों के सम्मुख

कहाँ तक ठहरते अतः उन्होंने पराजय स्वीकार कर पलायन का मार्ग अवलम्बन किया। चन्द्रसेन राव ने अपने शत्रु को रण क्षेत्र से भागते देख पीछा किया।

इस प्रकार शत्रु से बचते हुए बालाजी विश्वनाथ पन्त पाण्डव दुर्ग में जा पहुँचे। परन्तु थोड़े समय में ही सेनापति चन्द्रसेन राव के सैनिकों द्वारा दुर्ग में बन्दी बना दिये गये।

जब महाराज शाहू जी ने राजस्व जासूस द्वारा अपने विश्वस्त कर्मचारी के विपद् का समाचार सुना उनका हृदय सेनापति चन्द्रसेन के प्रति क्रुद्ध हो उठा और उन्होंने हलकारे द्वारा पत्र भेज कर चन्द्रसेन राव को राजधानी सितारा में शीघ्र लौट आने की आज्ञा दी। बालाजी विश्वनाथ पर महाराज की विशेष कृपा देख कर चन्द्रसेन राव का क्रोध बालाजी पर द्विगुणित हो उठा और साथही साथ वे महाराज शाहू से भी असन्तुष्ट हो गये। ऐसे समय में उन्होंने अपने सम्पूर्ण वीरों को संचालित करने में ज़रा भी आगा पीछा नहीं किया और खुले दिल से उसी हल-कारे द्वारा महाराज शाहू के पास यह सन्देशा भेजा कि 'यदि बालाजी सीधी तरह से हमारे हाथ में न सौंपे दिये जायँगे तो हम शत्रु पक्ष अवलम्बन कर इस समय का प्रति शोध कसी अन्य समय पर आप से लेंगे।'

अपने आश्रित सेनापति की ऐसी उद्दण्डता अवलोकन

कर महाराज शाहूजी प्रचण्ड क्रोध से तपित हो चन्द्रसेन राव का मद मर्दन करने के लिए हैवतराव को एक विशाल सेना के साथ भेजा।

महाराज की आज्ञा पाकर वीर हैवतराव ससैन्य चन्द्रसेन राव को पराजित कर बन्दी बनाने के लिये चल पड़े और थोड़े समय में चन्द्रसेन राव के सम्मुख उपस्थित हो युद्ध के लिये ललकारा। दोनों सेना में महा भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में हैवतराव ने सेनापति चन्द्रसेन राव को पराजित किया। बालाजी विश्वनाथ पन्त इस संकट से मुक्त हो कर अपने दोनों पुत्रों के साथ राजधानी सितारा में लौट आये।

इधर रण-क्षेत्र से पराजित हुआ चन्द्रसेन राव भाग कर रानी तारावांग बाई का आश्रित बना। इसके पश्चात् उसने मुगल सूबेदार निज़ामुल्मुल्क (हैदराबाद) के पास अपनी भावी विपत्ति की सूचना भेजकर गुलामी के जंजीर में अपने को अवरुद्ध करना श्रेष्ठ समझा।

सेनापति चन्द्रसेन राव का अपने आधीनस्थ सेना सहित शत्रु पक्ष में सम्मिलित हो जाने से महाराज शाहू की सेना थोड़ी हो गई। रानी तारा वांगबाई सुयोग अवसर समझ कर चन्द्रसेन की सहायता से अनेकों युक्तियों द्वारा महाराज शाहू के बचे-खुचे अन्य सर्दार सामन्तों को अपने पक्ष में मिलाने का प्रयत्न करने लगी। ऐसे समय में यदि महाराष्ट्र वीर बालाजी विश्वनाथ पन्त अपने असीम साहस तथा बुद्धि का परिचय

न देते तो अवश्य ही महाराज शाहू को विपत्ति ग्रसित होना पड़ता। बालाजी ने अपनी अद्भुत बुद्धि चातुर्य द्वारा दर्बार के सर्दार सामन्तों को रानी तारा बाँगबाई का पक्ष अवलम्बन करने नहीं दिया और साथ ही साथ उन्होंने बहुत से बलिष्ट तरुण पैदल वीर और युद्ध विशारद अश्वारोहियों को एकत्रित कर महाराज शाहू की सेना विभाग में भी पूर्ण रूप से सहायता की।

इस घटना के पूर्व ही बालाजी विश्वनाथ पन्त ने कृषकों को उन्नति का मार्ग प्रदर्शित करा कर राज कोष के वृद्धि का पथ साफ कर दिया था तथा और जो जो कार्य भार उनपर निर्भर था उसे भी पूर्ण रूप से चेष्टा कर सम्पूर्ण किया। इसके पश्चात् वे महाराष्ट्र देश के मंगलार्थ अन्य उपद्रवों को शान्त करने में अग्रसर हुए।

इस समय रानी तारा बाँग बाई ने पर्याप्त सेना संचय कर महाराज शाहू को युद्ध के लिये आवाहन किया। महाराज शाहू रानी तारा बाँगबाई को यथोचित दण्ड देने के लिये वीर सैनिकों के साथ रण-भूमि में जा उपस्थित हुए। दोनों दलों में घनघोर युद्ध हुआ और अन्त में महाराज शाहू की सेना ने तारा बाँग बाई की सेना को पराजित किया।

रानी तारा बाँग बाई महाराज शाहू से पराजित होकर रण-क्षेत्र से भाग निकलीं और उन्होंने कोल्हापुर में आ दक्षिण प्रान्त में एक नवीन राजधानी स्थापित कर अपने पुत्र को 'छत्रपति'

की उपाधि से राजा घोशित किया।

इस घटना के विघटित होने से महाराष्ट्र शूर-सामन्त सर्दार छिन्न-भिन्न होगये कोई महाराज शाहू के पक्ष में जा मिले किसी ने महाराज कोल्हाधिपति का आश्रय ग्रहण किया और कोई कोई मुगल सम्राट औरंगजेबके गुलामी की जञ्जीर में जा बंधे इतना ही नहीं वरन किसी किसी योद्धा सर्दार ने स्वयं अपने को राजा घोशित कर स्वतन्त्रता देवी की पूजा करना आरम्भ कर दिया।

स्वतन्त्रता देवी के उपासक सर्दारों के अत्याचार से प्रजा पीड़ित हो उठी। लूट मार का कार्य बड़े जोरों से आरम्भ हो गया। त्राहि! त्राहि!! की पुकार से दिग दिगन्त प्रति ध्वनित होने लगे। दु:ख के बादल जो छिन्न-भिन्न होकर शान्त हो गये थे वह पुन: एकत्रित होकर आकाश पर मडराने लगे। इन अत्याचारी सर्दारों में से दामाजी खेरात और उदयजी चौहान मुख्य (प्रधान) थे। उदयजी के प्रचण्ड ताप से उत्पीड़ित होकर महाराज शाहू को अपने देश के एक अंश के ऊपर उसे चौथ प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करना पड़ा था।

एक ओर कान्होंजी अंग्रे नामक सर्दार कोल्हाधिपति का पक्ष ग्रहण कर महाराज शाहू के आधीनस्थ 'कल्याण' देश को जय करने का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरी ओर कृष्णराव खटाउकर एक ब्राह्मण (उपाधिधारी राजा) ने विद्रोह का बीड़ा उठा कर राज्य में घोर अत्याचार करना आरम्भ

किया था। इसके अतिरिक्त दर्बार के छोटे मोटे सर्दार सामन्त गण भी महाराज शाहू की आधीनता में नहीं रहना चाहते थे आपस में स्वतन्त्र होने की काना फूसी कर रहे थे।

ऐसे समय जब कि देश में चारो ओर से तूफान उठ रहे थे, स्वतन्त्रता के पुजारी एक नहीं, दो नहीं अनेक सम्मिलित होकर महाराज शाहू के विपरीत डङ्का पीट रहे थे, स्वदेश में सुख शान्ति का स्थापन करना असम्भव था। परन्तु अराजकताओं को दमन करने की प्रचण्ड प्रतिज्ञा कर बीर शिरोमणि बालाजी विश्वनाथ पन्त ने महाराज शाहू की आज्ञा से कृष्ण राव खटाउकर को राजस्व शासन के बन्धन में बांधने के लिए प्रयत्न किया और उसी समय सचिव नारायण शंकर, दामाजी खेरात को, पेशवा भैरव पन्त पिंगले तथा कान्होंजी आंग्रे को पराजित करने के लिए अग्रसर हुए।

इस युद्ध यात्रा में बालाजी विश्वनाथ पन्त ने ही सफलता प्राप्त की। उन्होंने कृष्णराव खटाउकर को 'औंध' नामक स्थान पर पराजित किया। खेरात दामाजी ने सचिव नारायण शंकर को, और पेशवा भैरव पन्त पिंगले को आंग्रे ने पराजित किया। दोनों वीर अपने अपने प्रतिद्वन्दियों द्वारा बन्दी हुए।

इस युद्ध में बालाजी विश्वनाथ पन्त को विशुद्ध रण-कौशल तथा असीम बुद्धि चातुर्य का परिचय देना पड़ा था क्योंकि प्रतिद्वन्दी कृष्ण राव खटाउकर भी युद्ध विद्या तथा बल बुद्धि

में पारंगत था। परन्तु, एक शत्रु को पराजित करते ही उन्हें अन्य दूसरे शत्रु का दमन करने के लिए अग्रसर होना पड़ा था।

कान्होंजी आंग्रे पेशवा भैरव पन्त पिंगले को परास्त एवं आधीन करकेही चुप नहीं हुए वरन् उनका हृदय और कुछ प्राप्त करने के लिए लुभायमान हो उठा, अतः उन्होंने बड़ी बीरता द्वारा लोहगढ़ तथा अन्य स्थान अपने अधिकार में कर लिया।

कई दिन तक रण-भूमि की वायु पान करने से उनका शरीर एवम् उदर फूल उठा था, परन्तु बिना पर्वत को लांघे उचित मार्ग का पाना भी नितांत असम्भव था। वीर बालाजी ने अपनी शारीरिक अवस्था की ओर तनिक भी ध्यान न देकर कान्होंजी आंग्रे के दमन करने का भार अपने ऊपर लिया और पुनः युद्ध के लिये प्रस्थान किया।

बीस हजार सेनादल साथ लेकर बालाजी बिश्वनाथपन्त कान्होंजी आंग्रे को ध्वन्स करने के लिये चल पड़े और अपने वीरत्व से समस्त शत्रु सेना का संहार कर लोहगढ़ प्रभृति स्थानों को शत्रु के अधिकार से छीन लिया। इसके पश्चात् उन्होंने महाराज शाहूजी की आधीनता स्वीकार करने के लिये युक्ति पूर्ण एक पत्र कान्होंजी के सन्निकट भेजा। वीरबर बालाजी बिश्वनाथ पन्त के भेजे हुए युक्ति पूर्ण पत्र ने कान्होंजी आंग्रे को आधीन कर लिया।

बालाजी विश्वनाथ पन्त का युक्ति पूर्ण भेजा हुआ पत्र पाकर कान्होंजी ने कोल्हापुराधिपति का पक्ष त्याग कर महाराज शाहूजी का आश्रय ग्रहण किया।

बालाजी के बुद्धि कौशल्य ने शाहूजी और आंग्रे के मध्यस्थ सन्धि स्थापित किया। जिसके परिणाम स्वरूप, पेशवा भैरवपन्त पिंगले कारावास से मुक्त हुए।

कान्होंजी आंग्रे ने बलपूर्वक महाराज शाहूजी के जिन जिन दुर्ग और गढ़ों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था उनमें से 'राजमाची' दुर्ग को छोड़ कर अन्यान्य दुर्ग व गढ़ उन्होंने शाहू जी को लौटा दिये। महाराज शाहूजी की ओर से कान्होंजी का दस दुर्ग और सोलह गढ़ तथा महाराष्ट्र सेना के अधिष्ठाता का पद प्रदान किया गया। इतना ही नहीं वीर कान्होंजी आंग्रे ने शाहूजी से सरलेख की उपाधि भी प्राप्त की।

इस प्रकार बालाजी विश्वनाथपन्त ने पेशवा भैरव पन्त पिंगले को कारावास से उद्धार कर दुर्जय शत्रु का परास्त कर उसे सन्धि बन्धन में जकड़ हितचिन्तक बना लिया। राजनैतिक विभाग में भी अपनी जय लाभ कर बालाजी विश्वनाथपन्त सन् १७१३ ई० में राजधानी सितारा में लौट आये।

बालाजी के विपत्तिकालमें भी असीम साहस, शत्रु पराजयमें बुद्धि एवम् वाक्य चातुर्य इत्यादि अनेकानेक गुणों पर महाराज शाहूजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बालाजी

का विशेष रूप से सम्मान करते हुए बहुमूल्य वस्तुएँ पुरस्कार स्वरूप में प्रदान किया।

पेशवा भैरवपन्त पिंगले वीरबर कान्होंजी आंग्रे द्वारा युद्ध में परास्त एवं बन्दी हुए थे तथा अन्यान्य कार्यों में भी उनकी कार्य-दक्षता का अभाव देख कर शाहूजी ने उनका पदाधिकार वापस ले लिया और १७१३ ई० के नवम्बर मास की १६ वीं तारीख को महाराष्ट्र वीर शिरामणि बालाजी बिश्वनाथ पन्त को पेशवा भैरव पन्त पिंगले के पद पर नियुक्त कर श्रीमन्त उपाधि प्रदान किया।

वीर बालाजी बिश्वनाथपन्त अपनी असीम बुद्धि एवम् कठिन परिश्रम द्वारा 'श्रीमन्त' उपाधि लाभ कर राजस्व विभाग में एक उच्च पदाधिकारी हुए।

इस प्रकार महाराज शाहूजी से 'पेशवा' पद प्राप्त कर बालाजी प्रसन्न हो उठे। महाराज शाहू ने उनके प्रिय बन्धु बान्धवों को भी राजस्व विभाग में यथा स्थान नियुक्त किया। उन्होंने अम्बाजी पन्त पुरन्दरे को उनका उपमन्त्री निर्धारित किया और बालाजी के विशेष अनुरोध से हरिमहादेव भानुजी को उन्हीं के अधीनस्थ 'फड़नवीश' कार्य सुपुर्द किया।

इस प्रकार जो बालाजी कुछ वर्ष पूर्व सिद्धियों के भय से स्वदेश त्याग कर भागे भागे फिरते थे और सितारा में पूरे रा कर सौ मुद्रा वार्षिक वेतन पर क्लर्क (केरानी) का काम करते थे, वही बालाजी आज अपनी असाधारण बुद्धि चातुर्य से

([illegible] मन्त्री ! पेशवा के पद पर प्रतिष्ठित होगये थे और इन्हीं की कृपा [illegible] इनके बन्धु वर्गों ने योग्यतानुसार उच्च पद प्राप्त किये।

जिस समय कान्होंजी आंग्रे ने महाराज शाहू से मित्रता कर गढ़ तथा दुगा को प्राप्त किया था उस समय उसके निकटवर्ती श्रीवर्द्धन प्रभृति अनेक स्थान सिद्दियों के अधिकार में थे। आंग्रे ने उन स्थानों को अपने अधिकार में करने के लिये बालाजी से सहायता की प्रार्थना की। बालाजी ने सच्चे मित्र की भाँति आंगे की सहायता किया और सन् १७१५ ई० के जनवरी मास में गर्वित सिद्दियों को परास्त कर कान्होंजी आंग्रे ने उन स्थानों को अपने आधीन कर लिया। इस कार्य के अन्त होते ही बालाजी को दामाजी खेरात के दमन का भार उठाना पड़ा। शम्भाजी का पक्ष होने से उसने साहूजी के राज्य में मनमाना अत्याचार करना आरम्भ किया। अतः बालाजी सेना लेकर उसे इस अत्याचार का दण्ड देने के लिये हिंगनगढ़ अग्रसर हुये।

पूना से ५० मील पूर्व दिशा की ओर 'हिंगन' ग्राम के सुदृढ़ छोटे से गढ़ पर दामाजी खेरात का अधिकार था। इस गढ़ के चारों ओर प्रायः ४० मील के अन्तर्गत के देशों पर दामाजी खेरात का आधिपत्य था। बालाजी का सैन्य बल लक्षित कर दामाजी ने कपटता की युक्ति सोच निकाली। उन्होंने बालाजी से सन्धि करने की प्रार्थना की और शपथपूर्वक माहाराज शाहू की

आधीनता स्वीकार कर गढ़ समर्पण कर देने की प्रतिज्ञा की। बालाजी प्रसन्न हो अपने दोनों पुत्र बाजीराव और चिमणाजी तथा कुछ सैनिकों के लिये हुए गढ़ में प्रविष्ट हुए। उनके प्रविष्ट होते ही विश्वासघातक-नर पिशाच पापी दामाजी ने अचानक उन्हें बन्दी कर लिया बालाजी इस अत्रटित घटना के घटने से अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने दामाजी से मुक्त करने का प्रश्न किया। नीच दामाजी उन लोगों को छोड़ देने के उपलक्ष में अधिक द्रव्य का उत्तर दिया इतना नहीं वरन जब बन्दी गण भूख प्यास से व्याकुल हुए, पापी ने प्रत्येक के सम्मुख अंगारे के समान लाल बालू रखवा दिया।

इस समाचार को पाते ही महाराज शाहू अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने अपने राज्याधारस्तम्भ प्रिय बालाजी विश्वनाथ पन्त पेशवा को मुक्त करने के लिये मुंह माँगा द्रव्य दामाजी खेरात के पास भेजा।

महाराज शाहू की कृपा द्वारा बालाजी मुक्ति लाभ कर राजधानी सितारा में आ उपस्थित हुए। सर्व प्रथम उन्होंने सचिव नारायण शंकर को दामाजी के हाथ से मुक्त करने का विचार किया। यदि वे ऐसा न कर दामाजी के विरुद्ध युद्ध की घोशना कर देते तो निश्चय ही पापी लोग ब्राह्मण का प्राण हर लेते। अतः इन सब बातों का विचार कर दामाजी के विरुद्ध युद्ध यात्रा न करते हुए प्रथम उसके माँगे हुए द्रव्य को भेज कर सचिव नारायण को बन्दी से मुक्त किया। जब विप्र नारायण

सकुशल उनके पास पहुँच गये तब बालाजी ने सेना नायक मानसिंह मोरे, हैवत राव निलाम्बरकर के साथ विशाल सेना लेकर दामाजी खेरात के विरुद्ध प्रयाण किया।

वीर सेनापतियों के साथ बालाजी ने दामाजी का वह दृढ़-गढ़ चतुर्दिग से घेर लिया। फिर क्या था दोनों तरफ की तोपों और बन्दूकों की ध्वनिसे आकाश गूंज उठा। प्रतिवादी की तोपों द्वारा भेजे हुए बारुद गोले को भक्षण करते २ दामाजी के दुर्ग का उदर फूल उठा और क्षणभर में दामाजी के मद मर्दन करने वाली दमामा तोपों की भीषण मार से दुर्ग का फूला हुआ उदर सदाके लिये पचक गया। दामा का दृढ़ दुर्ग चूर-चूर होकर सदा के लिये पृथ्वी पर सो गया। अब दामाजी खेरात छिन्न भिन्न वीरों को एकत्रित कर बालाजी का सामना प्रत्यक्ष आकर करने लगे।

बालाजी के बीरों द्वारा दामाजी खेरात के अनेकानेक वीर रण-भूमि में सर्वदा के लिये निद्रा देवी की गोद में सुला दिये गये। अपने समस्त वीरों का बलि चढ़ा कर अन्त में दामाजी बन्दी हुए और सन् १७१७ ई०के जून मास में राजधानी सितारा लाये गये।

इस प्रकार बुद्धि चातुर्य एवं कार्य-दक्षता गुणगौरव से महाराज शाहू के दर्बार में पेशवा बालाजी विश्वनाथ की धाक अधिक रूप से जम गई। धीरे धीरे उनके अधिकार में राजस्व विभाग का समस्त कार्य हो गया। बिना उनकी आज्ञा के कोई

काम नहीं किया जाने लगा। इतना ही नहीं बरन महाराज शाहूभी बिना उनकी बिचार लिये एकपग आगे पीछे नहीं रखतेथे उन्हें बालाजी पर पूर्ण विश्वास था और वे अपना दाहिना हाथ समझते थे।

जिस समय वीर बालाजी अपनी असीम बुद्धि द्वारा महाराष्ट्र मण्डल के समस्त उपद्रवों को शान्त तथा अहंकारी देश द्राहियों को एक रस्सी में बाँध, एकएक पग गिरि शिखर पर चढ़ रहे थे उस समय आर्यावर्त्त की राजधानी दिल्ली में महान् उपद्रव मचा था। क्रूर औरंगजेब के प्रपौत्र बादशाह 'फरुखशियर को सैयद अब्दुल्लाखाँ और हुसेन अलीखाँ के अधीनस्थ होकर राज्य संचालन कराना पड़ता था।

अत: बादशाह फरुख़शियर तथा इनके आत्मीय इन दोनों सर्दारों के दु:ख से अत्यन्त पीड़ित हो उठे थे। इन्हें नष्ट करने का प्रयन्त कर रहे थे। दूसरी ओर महाराष्ट्र वीरों ने दक्षिण भारत के समस्त बादशाही देशों पर चौथ पद्धति स्थापनार्थ भयंकर उत्पात उठा रखा था। खण्डेराव दभाड़े के बार बार आक्रमण करने से सैयद हुसेन अली का पराक्रम शिथिल हो गया!

इस प्रकार अनेक संकटोसे आच्छादित हो सैयदोंने महाराज शाहू से मैत्रि कर दक्षिण देशों में शान्ति किस प्रकार हो इसका बिचार किया। बादशाह ने मराठों को चौथ अधिकार और 'सरदेश मुखी' का सनद देने से इनकार किया। सैयदों की आज्ञा न मानने के कारण सन् १७१७ ई० में बादशाह को उनसे

युद्ध करना पड़ा। अपना पक्ष निर्बल देख कर सयैदों ने महाराजा शाहू से समर सहायता की प्रार्थना किया। उन्होंने महाराज शाहू के पास इस प्रकार का पत्र लिख कर भेजा।

पत्र—"इस वर्त्तमान युद्ध में यदि महाराष्ट्र पति १५ हजार सेना द्वारा मेरी सहायता करें तो हम बादशाह द्वारा दक्षिण भारत के समस्त मुगल प्रदेशों पर चौथ प्रथा का अधिकार प्राप्त करा देंगे। इसके अतिरिक्त सेना के लिये १५ लाख रुपया देने के लिये तैयार हैं।"

दिल्लीश्वर के वज़ीर का भेजा हुआ पत्र पढ़ कर पेशवा बालाजी ने महाराज शाहू की ओर से सेना सहायता के बदले में इन वस्तुओं की प्रार्थना किया।

(१) महाराज शिवाजी द्वारा पारजित किये गये जोजो प्रदेश उनके आधीन थे उन पर सम्पूर्ण रूप से आधिपत्य का सनद प्राप्त होना चाहिये।

(२) बीजापुर, हैदराबाद, कर्नाटक, तंजौर, त्रिचिनापाली और मैसूर आदि ६ बादशाही देशों पर चौथ प्राप्ति का सनद प्राप्त होना चाहिये।

(३) महाराज शिवाजी का जन्म स्थान शिवनेरी और त्र्यम्बक दोनों दुर्ग महाराजा शाहू के आधीन होने चाहिये।

(४) महाराज शाहू के आत्मीय जन जो कि अभी तक दिल्ली में बन्दी हैं उन्हें मुक्त किया जाय।

(५) गोण्डावन और बरार देश का समस्त भूभाग जिस

पर कान्होंजी भोंसला का अधिकार है वह सब महाराष्ट्र विभाग में सम्मिलित कर लेने की आज्ञा मिलनी चाहिये।

(६) महाराज छत्रपति शिवाजी तथा उनके पूज्य पिता के भुजबल द्वारा कर्नाटक का जो समस्त भाग पराजित हुआ था वह सब महाराष्ट्रपति के अधिकार में होना चाहिए।

(७ शिवाजी द्वारा पराजित खानदेश जिसपर कि वर्त्तमान समय में बादशाह का अधिकार है उसके बदले में 'पंढरपुर' प्रभृति स्थान प्राप्त होना चाहिये।

यदि वज़ीरे-आलम बादशाह से इन प्रस्तावों को स्वीकार तथा सनद प्राप्त करा दें तो महाराष्ट्र-पति भी नीचे लिखे हुए नियमों का पालन प्रतिज्ञा-पूर्वक करेंगे।

(१) महाराज शाहू दिल्लीश्वर को १० लाख रुपया भेंट करेंगे।

(२) 'सरदेश मुखि' लाभ के एवज़ में महाराज बादशाह के देश की शान्ति रक्षा का भार ग्रहण करेंगे और जिन जिन बादशाही प्रदेशों से चौथ वसूल किया जायगा वहां शान्ति स्थापन करेंगे। यदि चोर डाकू ठग किसी प्रकार के उपद्रवियों द्वारा प्रजा पीड़ित होगी तथा प्रजा की क्षिति होगी तो उस क्षिति को पूर्ण कर उपद्रवियों के दमन करने का भार लेंगे।

(३) चौथ वसूल करने के उपलक्ष में १५ हजार महाराष्ट्रीय सेना सदा सर्वदा उपस्थित रहेगी। जो काम पड़ने पर बादशाह की सहायता करेगी। जिस समय जिस स्थान पर

सेना की आवश्यकता होगी उसी समय उसी स्थान पर १५ हजार सेना प्रस्तुत रहेगी।

(४) कोल्हापुराधिपति तथा उनके पक्ष के वीर योद्धा, कर्णाटक, बीजापुर, हैदराबाद इत्यादि स्थानों में किसी प्रकार का उत्पात करेंगे तो महाराज की ओर से उसका बन्दोबस्त किया जायगा।

(५) यदि कोल्हापुराधिपति के द्वारा बादशाही प्रजा की हानि होगी तो स्वयं महाराज शाहू उसकी पूर्ति कर देंगे।

यदि दिल्लीश्वर ऊपर लिखे प्रस्तावों को मान कर सनद देने के लिये तैयार हों तो महाराष्ट्रपति महाराजा शाहू अपने लिखे हुए नियमों का पालन करते रहेंगे और सेना द्वारा उनकी सहायता हो सकेगी अन्यथा नहीं। उत्तर द्वारा तुरन्त सूचित करें।

इस प्रकार का पत्र पेशवा बालाजी बिश्वनाथ प्रधान ने शाहू जी की आज्ञा से सैयद हुसेन अली के पास भेजा। सैयद हुसेन अली ने उपरोक्त प्रस्तावों को स्वीकार करते हुए बालाजी के पास उत्तर भेज दिया।

जब उसने प्रस्तावों को स्वीकार कर सनद देना स्वीकार कर लिया तब महाराष्ट्रपति महाराजा शाहू की ओर से रणकुशल वीर सेनापति मानसिंह मोरे, परसोजी भोंसला, शम्भाजी भोंसला, विश्वास राव पवारकर आदि के साथ कट्टर महाराष्ट्रीय १५ हजार सेना सैयदों की सहायतार्थ दिल्ली की ओर अग्रसर हुई।

इन सव सेना तथा सेना नायकों का भार पेशवा बालाजी विश्वनाथपन्त पृधान पर था। अथवा यों कहा जाय कि वे कमाण्डरन चीफ नियुक्त हुए। अस्तु !

सन् १७१८ ई० के अन्त में यह महा करालवीर महाराष्ट्रीय सेना ने राजधानी सितारा परित्याग कर रण भूमि के लिये दिल्ली की ओर यात्रा किया। महाराष्ट्र तरुण बीर बाजीराव ने भी अपने पूज्य पिता के साथ मुगल सम्राट की राजधानी दिल्ली के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया।

महाराज शाहू ने बालाजी को दिल्ली यात्रा के पूर्व ही यह उपदेश दिया था कि बादशाह से दौलतावाद, चन्दा दुर्ग, मालवा और गुजरात में "चौथ" पद्धति की आज्ञा प्राप्त करने की चेष्टा पूर्ण रूप से करना।

बीर महाराष्ट्र सेना के दिल्ली में उपस्थित होते ही दिल्ली बिल्ली होकर उछलने लगी। बादशाही सेना महाराष्ट्रीय सेना से मोर्चा लेने के लिये रण-भूमि में आ डटी। थोड़ी देर में रण चण्डी का नृत्य आरम्भ होगया। इस भयंकर युद्धमें कुछ सेना के साथ बादशाह 'फ़रुख़शियर मारे गये और सैयदों की सहायता से महम्मदशाह ने बादशाही सिंहासन प्राप्त किया।

इस प्रकार नये बादशाह को दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ करा कर सैयदों ने पूर्व कथित प्रतिज्ञाओं का पालन किया। उन्होंने बादशाह महम्मद शाह के द्वारा बालाजी को सत्वों की

की सनद प्राप्त करा दिया। इस समाचारको सुनतेही कि दिल्ली निवासी परास्त हुए, समस्त सर्दार और उत्पाती आग बबूला हो उठे। और विशेष रूप से वे महाराष्ट्रों के शत्रु हो गये। समस्त उपद्रवियों ने मिल कर बालाजी को सुरलोक पहुँचाने का दृढ़ संकल्प किया और वे मार्ग का अनुसन्धान करने लगे।

एक दिवस पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त सैयदों के साथ बादशाह के 'खास' दर्बार में जा रहे थे कि इतने में विश्वासघाती अधिवासियों ने अचानक महाराष्ट्रों पर आक्रमण किया। इस अचानक दुर्घटना के विघटित होने से महादेव भानू तथा शम्भाजी भोंसले और लगभग१५००महाराष्ट्र वीरों का बलिदान हुआ। परन्तु इसके साथ ही साथ चौगुने विद्रोहियों को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ा था।

इस अचानक विश्वास घात से महाराष्ट्र वीर क्रोधित हो उठे, उनकी लाल लाल आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। यदि उस समय सैयदों ने क्षमा-प्रार्थी हो कर द्रव्य-राशि द्वारा यथासाध्य महाराष्ट्रों की क्षति को पूर्ण न किया होता तो अवश्य उन्हें ही नहीं वरन् समस्त दिल्ली निवासियों को महाराष्ट्रीय प्रचण्ड अग्नि क्षण भर में स्वाहा कर जाती। अस्तु किसी भांति महाराष्ट्रोंके क्रोधको शांत कर प्रधान मन्त्री सैयद हुसेन अली ने सन् १७१६ ई० की ३ मार्च को नये बादशाह महम्मदशाह की मोहर से अंकित सम्पूर्ण अधिकारों

की एक सनद दिल्लीश्वर के हाथ से महाराष्ट्रों को प्राप्त करा दिया। और साथ ही साथ महाराज शाहू के पुरवासी तथा समस्त आत्मीयगण कारावास की असह्य यंत्रणा से मुक्त कर दिये गए।

महाराज शाहू के निम्न लिखित प्रस्तावों को दिल्लीश्वर के मन्त्री ने अस्वीकृत कर दिया था।

(१) खान देश के मध्य में जिन समस्त दुर्ग व गढ़ों पर महाराष्ट्रों का आधिपत्य था उसे महाराष्ट्र पति को प्रदान नहीं किया।

(२) त्र्यम्बक दुर्ग और उसके सन्निकट का स्थान।

(३) तुङ्ग भद्रा नदी के दक्षिण विभाग का समस्त प्रदेश जिसे महाराष्ट्रों ने स्वयं पराजित किया था।

(४) कोन्होंजी भोंसले ने बराबर प्रयत्न कर जिन समस्त देशों को अपने अधिकार में ले लिया था उसे महाराष्ट्र पति पूर्णरूप से मुक्त करने की आज्ञा चाहते थे। किन्तु सैयद हुसेनअली ने इस प्रस्ताव को पास नहीं किया।

(५) गुजरात और मालवा प्रदेश में चौथ प्रथा का अधिकार समयानुसार प्रदान करने का बचन दिया।

पेशवा बाला जी विश्वनाथ पन्त प्रधान ने समस्त अधिकार और सनद प्राप्त कर स्वदेश की ओर यात्रा किया। यात्रा के पूर्व इन्होंने 'देवराव' हिंगणे राजनैतिक विद्या बुद्धि में पारंगत ब्राह्मण को 'पलची' स्वरूप दिल्ली में छोड़ दिया।

इस प्रकार महाराष्ट्र पति के प्रधान, बालाजी ने दिल्लीश्वर से सन्धि स्थापन कर राजधानी सितारा की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में राजनीतिज्ञ विद्या बुद्धि विशारद पेशवा बालाजी बिश्वनाथ पन्त ने जोधपुर, जयपुर, उदयपुर आदि के राजाओं से भेंट कर सन्धि स्थापन कर लिया और उन्हें महाराष्ट्र पति का सच्चा मित्र बना लिया।

जिस समय पेशवा बाला जी विश्वनाथ पन्त प्रधान सैयदों की सहायतार्थ ससैन्य दिल्ली में प्रविष्ट हुए उन्होंने महाराष्ट्र वीरों का सेना-शिविर यमुना नदी के दक्षिण ओर की तट भूमि पर नियोजित किया था। यह महाराष्ट्रीय सेना सन् १७१६ ई० के जनवरी और फरवरी (दो मास) तक दिल्ली में रही। सेना शिविर के निकटवर्ती स्थलसमूह जिसमें कृषकों ने अकाट्य परिश्रम द्वारा अन्न बोया था (खेती किया था) उस भूमि को (खेती को) सैनिक गण विनष्ट न कर सकें इसका पूर्ण रूप से बन्दोबस्त करने के लिए बालाजी ने कुछ कर्मचारियों को कड़ी आज्ञा दिया था, और साथ ही साथ उन्होंने सैनिक दल में भी इस बात की घोषणा करवा दी थी। परन्तु अहंकारी सर्दार मल्हारराव होलकर ने बालाजी की आज्ञा का पालन नहीं किया। उस सर्दार ने एक दिन इस आज्ञा की अवज्ञा कर अपने दलस्थ अश्वादिकों के लिये बल पूर्वक किसी कृषक के क्षेत्र (खेत) से अन्न काट कर उसका क्षेत्र (उसकी खेती) बिलकुल नष्ट कर दिया।

इतना ही नहीं वरन अपनी प्रभुता दर्शाने के लिए बेचारे गरीब कृषकों को दण्ड भी दिया।

इस दुर्घटना से दुःखी होकर कृषकों ने बाजीराव के निकट यह अभियोग उपस्थित किया।

अपने पिता के आज्ञा की अवज्ञा सुन तथा गरीब कृषकों के आँसू देख कर बाजीराव क्रोधित हो उठे और असली अपराधी का अनुसन्धान करने लगे। वे प्रत्येक अश्वशालाओं का अन्वेषण करते हुए मल्हारराव के अश्वदल के सम्मुख अन्न राशि (खेत का कटा हुआ ताजा अन्न) देख कर, अश्व रक्षक अनुचरों को ही अपराधी समझ उन्होंने दण्ड देना आरम्भ किया।

इस काण्ड को मल्हारराव कुछ दूर खड़े देख रहे थे। उन्हें बाजीराव पर बड़ा क्रोध हो आया और वे उस क्रोध से उन्मत्त हो उन्होंने बाजीराव को लक्षित कर एक ढेला मारा। तथा क्रूर वचन भी कहे। बाजीराव ने उसके उपलक्ष में न मुख से ही कुछ वचन कहा और न अन्य उपाय का अवलम्बन किया। यदि उस समय तरुण वीर बाजीराव अन्य साधारण युवकों की भाँति धैर्य खो देते तो तत्काल उन्हें मल्हारराव से द्वन्द युद्ध करना पड़ता। परन्तु वह अपने क्रोध को दबा नितान्त गम्भीर समुद्र की भाँति गम्भीरता धारण कर चुपचाप अपने शिविर में लौट आये।

बाजीराव चुपचाप अपने शिविर में लौट आये और उन्होंने

अपने पूज्य पिता को उपरोक्त घटना कह सुनाया।

अपने पुत्र बाजीराव द्वारा मल्हार राव की प्रचण्ड उद्दण्डता सुन कर पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने कर्तव्य विस्मृत मल्हार राव सर्दार का सर्वस्व अपहरण कर लेने का दण्ड देना चाहा किन्तु अन्त में कई एक सैनिकों के विनय युक्त आग्रह एवम् होलकर सर्दार के बाजीराव से क्षमा प्रार्थी होने पर पेशवा बालाजी ने मल्हार राव का अपराध क्षमा कर दिया।

मल्हार राव होलकर ने बाजीराव से क्षमा तो माँग लिया परन्तु उस दिन से उनका क्रोध तरुण बाजीराव पर द्विगुणित हो उठा और वे इस क्रोध से दग्ध हो कर बाजीराव को पीड़ित करने के लिए मार्ग का अनुसन्धान करने लगे।

एक दिन बीर बाजीराव अस्त्र शस्त्र से विवर्जित हो कहीं जा रहे थे कि अचानक मल्हार राव होलकर से उनकी भेंट हो गई। मल्हार राव तो ऐसे ही अवसर का अनुसन्धान कर रहे थे अतः बाजीराव को निशस्त्र देख कर उनकी आसुरीय जिज्ञासा ने तत्काल उग्र रूप धारण किया। क्रोध से उन्मत्त होकर मल्हार राव ने तरुण बाजीराव पर सहसा आक्रमण किया और अपने हाथ के भाला का चमचमाता हुआ अग्रभाग उनकी छाती पर रख क्रोध से दाँत पीसते हुए कहा—"यदि इस समय भीषण भाले द्वारा तुम्हारा हृदय बेध कर तुम्हें यमपुर पहुँचा दूँ तो तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन है! बोलो, तुम्हारे ही कारण मुझे अपमान सहना पड़ा था।"

इस आकस्मिक घटना के उपस्थित हो जाने से तरुण वीर बाजीराव किंचित मात्र भी विचलित न हुए वरन उस वीर युवा ने किंचित मुस्कुराते हुए कहा—"यदि इस समय मेरे हाथ में आप की भांति भाला होता तो मैं इस प्रश्न का यथोचित उत्तर सहज ही में दे देता। अस्तु, पूर्व कई युद्धों में आप का साहस और रण-कौशल देख कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। आप वीर पुरुष हैं इस समय मुझ पर प्रसन्न हूजिये और अपना क्रोध परित्याग कर मुझे मित्र बनाइये।"

बाजीराव की मञ्जमधुर वाणी से मुग्ध होकर मल्हार राव होलकर का क्रोध शान्त होगया। उन्होंने बाजीराव के वक्षस्थल से भाला हटा लिया और सच्चे वीर की भाँति उन्हें गले से लगा कर मित्रता स्थापन किया।

उस समय से इन दोनों वीरों का अकृत्तिम प्रणय सदा बना रहा और जीवन के शेष भाग पर्यन्त अटूट रहा।

शत्रुओं को परास्त कर दिल्लीश्वर से स्वतन्त्रता की सनद लेकर सन् १७१८ ई० की ४ जुलाई को पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त, राजधानी सितारा में आ उपस्थित हुए। अपने विजयी पेशवा का आगमन सुनकर महाराज शाहू राजदर्बार के सूर सामन्तों को साथ ले कुछ दूर आगे जाकर उनका स्वागत किया और मान सम्मान के साथ उन्हें दर्बार में ले आये।

पेशवा बालाजी के अकाट्य परिश्रम तथा बुद्धि चातुर्ता

द्वारा इस सनदको प्राप्त करने से समस्त महाराष्ट्रों के प्रसन्नता का पारा वार न रहा। पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने से महाराष्ट्र राज्य में जहाँ जहाँ मुगलों का अधिकार था उठ गया और राज्य में कहीं किसी स्थान पर यवन अधिकारी नहीं रह गया। महाराज शाहू का प्रताप समस्त महाराष्ट्र राज्य में पूर्णतः छा गया।

महाराज शाहू अपने पेशवा प्रधान द्वारा समस्त दुःख विपत्तियोंका नाश एवं दिल्लीश्वरसे स्वतन्त्रताकी सनद प्राप्त करने के उपलक्ष्य में बालाजी को विशेष इज्जत के साथ पुरस्कृत करना चाहा। अतः उन्होंने एक दिन राज्य के बड़े बड़े सूर, सामन्त, सर्दारों को निमन्त्रित कर एक विशाल दर्बार किया और मान सम्मान के साथ पेशवा बाला जी को पुरस्कार रूप में पूना देश के अन्तर्गत पाँच देशों को सरदेशमुखी स्वत्व और कई एक ग्रामों का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किया। खानदेश और बाला घाट तो प्रथम ही बालाजी के अधिकार में आ चुका था।

इस प्रकार पेशवा बालाजी पन्त महाराज शाहू की ओर से विशेष पुरस्कृत तथा प्रधान के पद पर नियुक्त हुए। अब उन्होंने राज्य के अन्य शत्रुओं के पराक्रम को नष्ट करने का निश्चय किया। परन्तु इस कार्य के पूर्व उन्हें राज्य के आमदनी खर्च की ओर ध्यान देने की नितान्त आवश्यकता थी, क्योंकि आमदनी के सम्बन्ध में सर्दार गणों के प्राप्य अंश का कोई निर्धारित नियम नहीं था। इस कारण राज कोश में प्रायः

धन का अभाव ही रहता था। पेशवा बालाजी ने राजकोश की बृद्धि करने के लिये जमाबन्दी का सूक्ष्म हिसाब देख कर आय-व्यय के सम्बन्धमें कई एक विशेष नियम निर्धारित किये। इस नवीन नियमके निर्धारणके फल स्वरूप राज काजके अनेक 'गड़बड़' निवृत्त हुए और राजकोश की बृद्धि हुई।

प्रजावर्ग के दुःख सुख में सहायक होना एवं दण्डित को उचित दण्ड देना इत्यादि अनेकानेक सुखकर नियमों को निर्धारित करने से समस्त राज पुरुषों को राज्य की श्री बृद्धि करने का स्वाभाविक अनुराग उत्पन्न हुआ इतना ही नहीं वरन यवनों के हाथ से नित्य नूतन प्रदेश छीनने की प्रबल आकांक्षा महाराष्ट्र वीरों के हृदय में जागृत हो उठी और वे अन्य प्रदेशों को जीत कर महाराज शाहू के राज्य में मिला लेने की चेष्टा में संलग्न हुए।

राज्य के बड़े बड़े सूर सामन्त व सर्दारों का यथोचित आदर प्रतिष्ठा तथा घनिष्ट भाव से सम्बन्ध संयोजित कर पेशवा बालाजी ने समस्त महाराष्ट्र मण्डल में एकता स्थापित कर दिया। यही कारण है कि महाराष्ट्रों का आधिपत्य थोड़े समय में ही समस्त भारतवर्ष में विस्तृत होगया था। विजयी पेशवा बालाजी ने समस्त यवन ठगदस्यु दलोंको पराजित कर प्रजा को उनसे निर्भय कर दिया। विशेषतः कृषक बेचारोंके आनन्दका तो ठिकाना ही न रहा। कारण कि कृषक ही विशेष रूप से मुसलमानी विप्लव द्वारा विदग्ध और जर्जरित किये जाते थे। अस्तु!

पूर्व लिखित दैव घटना में पड़ कर बालाजी तथा सचिव नारायण शंकर दामाजी के विश्वासघात के कारण बन्दी हुए थे। महाराज शाहू द्वारा बालाजी तो कारावास से मुक्त होगये किन्तु नारायण शंकर को कुछ दिवस तक शत्रु दुर्ग में बन्दी रहना पड़ा था। और उन्हें अपने मुक्त होने की कोई आशा भी न थी। उस समय वीर बालाजी ने दामोदर जी को मुंह माँगा द्रव्य भेज कर सच्चे मित्र की भाँति नारायण शंकर को शत्रु के कराल मुख से मुक्त किया। और साथही अपने तोपों द्वारा दामाजी का दम्भी दुर्ग चूर्ण चूर्ण कर उन्हें बन्दी बना महाराज शाहू के सन्निकट ले आये। यह समाचार सुन कर सचिव नारायण शंकर की माता ने पुत्र के प्राण रक्षा हेतु बालाजी को 'पुरन्दरगढ़' और 'पूना' देश पारितोषिक स्वरूप प्रदान किया था। बालाजी ने महाराज शाहू से अनुमति लेकर उसको ग्रहण किया।

इस समय पूना देश मुगलस्थ आधीन 'बाजीकदम' नामक एक व्यक्ति के अधिकार में था। पूना के आय के आमदनी पर जो चौथ निर्धारित था केवल उसीको सचिव नारायण शंकर प्राप्त करने के अधिकारी थे। उन्होंने माता की आज्ञा से चौथ अधिकार बालाजी को प्रदान कर दिया। थोड़ा बहुत पूना पर अधिकार प्राप्त हो जाने पर बालाजी ने बुद्धि चातुर्य द्वारा मुगल सर्दार को बशीभूत कर सन् १७१८ ई०के अक्तूबर मास में सम्पूर्ण पूना प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

इतने काल तक बालाजी का परिवार 'सासवाड़' ग्राम में वास कर रहा था। अब उन्होंने पूना के पुरन्दर दुर्ग में अपना निवासस्थान निर्देश करने की इच्छा महाराज शाहू के सम्मुख प्रकट किया। अपने प्रिय पेशवा की इच्छा की पूर्ति के लिये महाराज शाहू भला कब आज्ञा प्रदान न करते, उन्होंने तत्काल समस्त पूना प्रदेश को बालाजी को पुरस्कार स्वरूप दान कर दिया। विजयी पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त प्रधान के पूना में पर रखते ही समस्त चोर ठगादि अत्याचारी थोड़े समय में ही वहाँ से भाग खड़े हुए और प्रजा शान्ति पूर्वक अपना अपना व्यवसाय करने में उत्कर्षित हुई।

इस प्रकार पेशवा बालाजी पूना देश को अपने आधीन कर पुरन्दर दुर्ग में सपरिवार रहने लगे। इधर कतिपय दिनों से महाराष्ट्र साम्राज्य की सुव्यवस्था, स्वजातियों की श्री वृद्धि तथा राजकीय कार्योंमें अधिक परीश्रम करने से बालाजी का स्वास्थ भंग होगया। शोचनीय अवस्था में भी उनको प्रधान सेनापति का कार्य-समर भूमि में करना पड़ा था। इस कारण उनका शरीर और भी क्षीण हो गया। अतः उन्होंने जलवायु परिवर्त्तन करने के लिये और कुछ दिवस एकान्त में रह कर विश्राम करने की इच्छा महाराजा शाहू से प्रकट की। महाराज शाहू ने बालाजी को 'सासवाड़' ग्राम में जाकर निवास करने की अनुमति दी और साथ ही औषधि आदि में भरपूर प्रयत्न करने का आदेश वैद्यों को दिया।

बालाजी सपरिवार 'सासबाड़' ग्राम में आकर रहने लगे। वैद्यों ने उनको औषधि देने में कोई कसर उठा न रखा, परन्तु दैव के प्रतिकूल होने से औषधि कुछ लाभ न कर सकी। दिन प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया और एक दिवस उस रोग ने भयंकर रूप धारण किया। सन् १७२० ई० की २ अप्रैल को समस्त महाराष्ट्र राज्य के चमकते हुये सितारे पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त प्रधान को अपना प्राण त्याग देना पड़ा। अपने कुटुम्बियों को ही नहीं, वरन् समस्त महाराष्ट्रों को रुलाते हुए बालाजी मृत्युलोक का सुख छोड़ कर स्वर्ग का सुख प्राप्त करने के लिए चल बसे। राज्य में हाहाकार मच गया। अपने प्रधान की परलोक यात्रा का दुःख सम्बाद श्रवण कर समस्त महाराष्ट्रों के चक्षुओं से अविकल अश्रुधारा बह उठी। जब महाराज शाहू ने अपने परम प्रिय दक्षिण हस्त पेशवा प्रधान का परलोक गमन सुना तो वे एक बारगी सन्नाटे में आगये, कुछ देर के लिए उनकी आँखें बन्द हो गई और वे शोक सागर में गोते लगाने लगे।

४

(स्वर्गवासी पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त प्रधान का चरित्र)

बालाजी विश्वनाथ असाधारण बुद्धि प्रतिभा शाली एवं विचक्षण राजनीतिज्ञ पुरुष थे। युद्ध कौशल की विशेष सिद्धि न प्राप्तकर सकने परभी वह असाधारण योद्धा थे। उनमें साहस कूट कूट कर भरा था। वह अत्यन्त सरल प्रकृति के शान्त चित्त वीर थे। मुगल राज परिवार में बाल्यावस्था से ही होने के कारण महाराज शाहू बिलासिता के प्रिय हो गये थे। परन्तु उनके परम प्रिय पेशवा विलासिता देवी की आराधना से कहीं दूर थे। यदि महाराज शाहू को बालाजी ऐसे कार्य दक्ष प्रतिभा शाली राजनीति विशारद पुरुष की सहायता न मिलती तो निस्सन्देह वह महाराष्ट्र के राज्यों में एक्यता स्थापित कर सुख शान्ति पूर्वक राज्य शासन न कर पाते।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ पन्त प्रधानने दिल्लीश्वर से समस्त महाराष्ट्र राज्य को स्वतन्त्र कर तथा राज्य के समस्त उपद्रवों का दमन करते हुये महाराष्ट्रों को एक्यता के बन्धन में बाँध एक नूतन शक्तिदान किया था। महाराज शाहू तो नाम मात्र के राजा थे। राज्य का समस्त कार्य बिना बाला जी की अनु-

मति के नहीं हो पाता था। इतना ही नहीं बरन महाराज शाहू भी बिना उनकी सलाह लिये राज्य विषयक नियम निर्धारित नहीं करते थे।

माता पिता की मृत्यु होने से कनिष्ट भ्राता और भगनि एक बारगी शोकातुर हो उठे परन्तु पितृ तुल्य साहसी बाजीराव ने नाना युक्तियों द्वारा उनके दुःख का नाश कर उन्हें साहसी होने उपदेश दिया।

५

बाजीराव को पेशवा पद प्राप्ति

——:*:——

जिस समय पेशवा बालाजी विश्वनाथ स्वर्गवासी हुए थे उस समय बाजीराव की अवस्था २१ वर्ष की थी। उनके पिता बालाजी ने नौ वर्ष की अवस्था से ही प्रत्येक युद्ध यात्रा, समर भूमि और प्रचण्ड युद्ध समय में अपने साथ ले जाकर जिस प्रकार युद्ध विद्या में पूर्ण पारंगत बना दिया था उसी प्रकार 'राजकाज'का निरक्षण करनेमें भी पण्डित बना दिया था। पिता के समान वाक् चातुर्य, असाधारण बुद्धि, विचक्षण सहन शक्ति अकाट्य परिश्रम तथा मधुर भाषण आदि अनेकों गुण उनमें विद्यमान थे।

बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् महाराज शाहू ने बाजीराव को सर्व प्रकार से योग्य समझ कर उक्त पद पर प्रतिष्ठित करने का संकल्प किया। प्रतिनिधि श्रीपतराव ने तो महाराज शाहू को इस विषय में अन्य प्रकार का परामर्श दिया था। किन्तु उन्होंने पिता के ही तुल्य तरुण वीर बाजीराव को महामेधावी-बिचक्षण राजानितिज्ञ तथा राज कार्य में विलक्षण उत्साही देख कर प्रतिनिधि के कुटिलता पूर्ण परामर्श को स्वीकार नहीं किया

और वे अपने संकल्प पर दृढ़ रहे।

पेशवा बालाजी की मृत्यु के पूर्व ही बाजीराव ने पिता की आज्ञा से महाराष्ट्रीय सेना लेकर 'आलम अली' (सैयदों के प्रतिनिधि) के सहायतार्थ खानदेश में गमन किया था। 'आलम अली ने वीर बाजीराव की सहायता द्वारा देश द्रोहियों को यथोचित दण्ड देकर विप्लव को शान्त किया तथा बाजीराव को पुरस्कार स्वरूप में कई एक अमूल्य वस्तुएँ भेंट की।

बाजीराव उन सब वस्तुओं को लिए दिये पिता के सन्निकट (सासवाड़ में) आ उपस्थित हुए और उनके मृत्यु के समय में भी वही उपस्थित थे। उन्होंने "उसी स्थान (साअवाड़ में) पर पिता का श्राद्ध आदि कर्म किया। अभी वे श्राद्ध कर्म से मुक्त भी न हुए थे कि इतने में महाराज शाहू ने बाजीराव को पितृपद का भार ग्रहण करने के लिए राजधानी सितारा में बुला भेजा।

महाराष्ट्र पति का आज्ञा पत्र पाकर बाजीराव उनके सन्निकट जा उपस्थित हुए। उस समय रामचन्द्र पन्त, अम्बाजी पन्त पुरन्दरे, भानु जी तथा कनिष्ट भ्राता चिमणाजी आप्पा आदि वीर पुरुष उनके साथ थे।

महाराज शाहू ने बाजीराव को पेशवा पद पर विभूषित करने के लिये एक खास दिन नियत किया था इसलिये इस महोत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने एक विराट दरबार की आयोजना कर राज्य के समस्त सूर सरदार तथा सामन्त गणों को

निमन्त्रित किया। राजा शाहू बाजीराव को साथ लेकर राज दर्बार में उपस्थित हो सिंहासन पर विराजमान हुए। महाराज के सिंहासन पर बिराजते ही समस्त दर्बार ने महाराष्ट्र पति की जय ध्वनि की। तत्पश्चात् महाराज शाहू ने बाजीराव को "पेशवा" पद के साथ २ बहुमूल्य वस्त्र तथा हीरा मोती आदि प्रदान किया और अपने हाथों से महाराज शाहू ने स्वयम् सुवर्ण मूठ की तलवार तरुणवीर बाजीरावको अर्पण किया।

इस प्रकार महाराज शाहू ने मान सम्मान के साथ 'पेशवा' उपाधि प्रदान कर बाजीराव को पितृ पद पर प्रतिष्ठित किया और राज्य का समग्र कार्य भार उनको सौंप दिया। बाजीराव के कनिष्ठ भ्राता चिमणा जी आप्पा भी महाराज के सन्निकट रह कर शेष राज काज का कार्य करते थे।

इस समय बाजीराव पर कई एक कार्यका उत्तरदायित्व था। एकतरफ उन्हें राजकाज देखना पड़ता था और दूसरी ओर राज्य के निकटस्थ प्रदेशों के विद्रोहियों को दमन कर शांति स्थापन करना पड़ता। था उनका अधिकांश समय इसीमें व्यतीत हो जाता था और राज्य का कई एक कार्य उनके बिना रुक जाने लगा। यह देख कर महाराज शाहू ने उनके कनिष्ठ भ्राता चिमणा जी आप्पाको 'नायक पेशवा' (बाजीराव के असिस्टेण्ट) की उपाधि प्रदान किया।

महाराज शाहू के राजत्वकाल में 'पेशवा' शब्द प्रसिद्ध होने पर भी 'प्रधान' का व्यवहार होता था। क्यों कि बाजीराव

को राज सरकार की ओर से 'पेशवा' और 'प्रधान' दोनों उपाधियां लिखी जाती थीं।

बाजीराव की असाधारण बुद्धि वैभव ने अधिकांश में महाराष्ट्र सरदारों का आत्म विग्रह शान्त कर दिया था। किन्तु कतिपय सरदारों ने कोल्हापुराधिपति महाराज शम्भाजी का पक्ष अवलम्बन किया था। फिर भी स्वर्गवासी पेशवा बालाजी विश्वनाथके अकाट्य परीश्रम और चेष्टासे महाराज शाहूका पक्ष प्रबल था। प्रजा, चोर, दस्यु ठगादि के भय से वंचित थी। समस्त राज्य में शान्ति देवी का निवास था। दिल्ली के राष्ट्र परिवर्तन के समय में महाराष्ट्रीय सेना ने जो सहायता की थी उसके कारण महाराज शाहू की प्रतिष्ठा उत्तर भारत में और भी विशेष रूप से हो गई थी।

६

निज़ामुलमुल्क (नवाब हैदराबाद)

पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ हम लिख देना चाहते हैं कि इस क्रांतियुगमें पुर्तगोज़ भारत में पधार चुके थे और तत्कालीन स्थिति देख कर थोड़े दिनों में ही वणिज्य वृत्ति का त्याग कर राजकीय व्यापार में प्रवेश करने के लिये अकाट्य परिश्रम करने लग गये थे। साम, दाम, दण्ड, इन तीन युक्तियों द्वारा मनोवांछा फलीभूत नहीं हो सकती, चतुर पुर्तगीज़ इसे भली भाँति जानते थे। अतः उन्होंने भेद युक्ति का आश्रय लिया और वह क्रमशः इस देशके राजन्य चक्र में छिद्र अन्वेषण कर उन लोगों के साथ अपनी शक्ति की परीक्षा करने लगे। थोड़े ही समय में पुर्तगीज़ों की भेद युक्ति ने तीर के समान काम करना आरम्भ किया और इन लोगों ने पश्चिमीय समुद्रके निकटवर्ती अनेक बन्दरोंको अपने आधीनस्थ कर लिया।

उस समय वीर बाजीराव 'पेशवा' पद पर नियुक्त हो चुके थे। उन्होंने राज कार्य में प्रवृत्त हो कर देखा कि इस समय 'गोवा' अधिकारी पुर्तगीज़ लोग भी महाराष्ट्र मण्डल के बलिष्ट शत्रु हो चुके हैं।

पुर्तगीज़ों की विपुल समवेदना सुन कर डच और अङ्गरेज भी व्यापार करने की नियत से भारत की सम्पत्ति अपहरण करने के लिये दक्षिण-पश्चिम समुद्र तट पर विराजमान हो चुके थे। परन्तु पुर्तगीज़ों की भाँति राज्य शासन व्यापार की ओर इन लोगों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था।

एक ओर विदेशी भारत भूमि पर अपना सिक्का जमाना चाहते थे और दूसरी ओर देश के मुग़ल बादशाहों की अवस्था दिनों दिन शोचनीय होती जाती थी। इसलिए उन्हें राज्य में प्रविष्ट होने का सुगम मार्ग दृष्टिगोचर होने लगा। अस्तु!

दिल्लीपति महम्मदशाह स्वर्गवासी मुग़ल सम्राटों से दुर्व्यसन तथा विलासप्रियता में कुछ कम न थे। आठों पहर सुधा रूपी सुरा को शिरोधार्य कर सृष्टि की सर्वोत्तम कारीगरी का नमूना सुन्दर वाराङ्गनाओं के रुपलावण्य में भूले हुए थे। अपने राजा की इस दुरावस्था को देख कर कर्मचारीगण भी अकर्मण्यता की सीमा लाँघ चुके थे। सभी अपने अपने को शाहंशाह महम्मद शाह समझने लगे थे प्रजा पर अत्याचार के बादल मड़राने लगे। आय व्यय की अव्यवस्था होनेके कारण बादशाहको दैनिक निर्वाह के लिए भी द्रव्य मिलना दुश्वार होगया। इस कारण विवश हो कर बादशाह महम्मद शाह ऋण के बन्धन में जकड़ने लगे। अस्तु! अपने को ऋण बन्धन से मुक्त करने के लिए शाहंशाह ने नित्य नवीन कानून निकालना आरम्भ किया। प्रजा पुञ्ज नित्य नूतन कर से पीड़ित हो उठी। घोर

अत्याचार से पिसे जाते हुए दीन गृहस्थों का मर्मभेदी आर्त-नोद श्रवण कर, दुःखी प्रजा की सहायता करे ऐसा कोई वीर पुरुष उत्तर भारत में नहीं था।

इसी समय सुदक्ष राजनीति विशारद एक व्यक्ति ने अपने भुजबल तथा युद्ध कौशल द्वारा यवनों के पतित गौरव को पुनः दक्षिण भारत में प्रतिष्ठित किया। इस प्रसिद्ध सर्दार-'मीर कमरुद्दीन' का जन्म सन् १६४० ई० में हुआ था। वज़ीर सैयदों ने इस वीर को १७१७ ई० में मालवा प्रदेश का सूबेदार नियत कर दक्षिण भारत की ओर भेजा था। इस वीर पुरुष ने तत्का-लीन महाराष्ट्र शक्ति की गति को रोकने का नितान्त परिश्रम किया और वह अधिकांश में सफल भी हुआ। यदि इस पवन वीर का आविर्भाव उस समय न होता तो अवश्य महाराष्ट्रीय वीर गण समस्त भारत में हिन्दू शासन का सिक्का जमा देते।

दिल्लीश्वर से विद्रोही बन कर निज़ामुल्मुल्क ने मालवा से लेकर नर्मदा नदी के तट पर्यन्त समग्र भू-भाग पर आक्रमण कर अपने आधीन कर लिया। इतना ही नहीं वरन उस वीर ने अपने विक्रम द्वारा प्रसिद्ध 'आशीरगढ़' के दुर्ग पर भी आधिपत्य जमा दिया था। निज़ामुल्मुल्क का सितारा तेज़ देख कर अथवा भयभीत होकर अधिकांश बादशाह के हित-चिन्तक मुगल सरदार विद्रोही बन कर इस वीर के पक्ष में सम्मिलित हो गये। अब निज़ामुल्मुल्क की शक्ति पहले से भी अधिक हो गई।

यह भीषण विश्वास घातक-विद्रोही समाचार जब दिल्ली राज्य के सच्चे अधिकारी सैयदों ने सुना तो वे क्रोधित हो उठे और उन्होंने इस विश्वास घातक विद्रोह का फल चखाने के लिये, कुछ सेना के साथ सेनापति दिलावर खाँ को निज़ाम के विरुद्ध युद्ध करने को भेजा, तथा औरङ्गाबाद से सैयद हुसेन अली के भतीजे सैयद आलम अली ने भी निज़ाम का मद मर्दन करने के लिए युद्ध यात्रा की।

दोनों सेनापति अपनी अपनी सेना लेकर समर भूमि में जा उपस्थित हुए और उन्होंने अपनी शक्ति भर निज़ाम को परास्त करने का भी प्रयत्न किया। परन्तु दैव के विपरीत होने के कारण निजामुल्मुल्क के भुज विक्रम से आलम अली और दिलविर खाँ को समर भूमि में ही प्राण की आहुति देनी पड़ी।

इस दुख संवाद को सुन कर सैयद हुसेन अली ने स्वयम् शाहंशाह के साथ एक विशाल सेना सहित सन् १७२० ई० के अक्तूबर मास में निज़ामुल्मुल्क के विरुद्ध समर भूमि की ओर यात्रा किया। किंतु मध्य मार्ग में ही बादशाह की गुप्त आज्ञानुसार किसी विश्वासघातक ने पीछे से सैयद हुसेन अली का मस्तक शरीर से अलग कर दिया और द्वितीय भ्राता सैयद अब्दुलअली को भी शाही सुख छोड़ कर कारागार की नारकीय यन्त्रणायें भोगनी पड़ीं।

इस प्रकार निजामुल्मुल्क का कंटकीय मार्ग बिना परिश्रम किये एक बारगी साफ होगया और वह उन्नति के शिखर पर

चढ़ने के लिये किसी सुअवसर का अनुसन्धान करने लगा।

विश्वविख्यात दिल्ली के शाहंशाह महम्मद शाहने राजनीति विशारद निजाम के असाधारण विपुल बल बुद्धि को देख कर प्रधान मन्त्री पद प्रदान करने के लिये निजामुल्मुल्क को राजधानी दिल्ली में बुला भेजा। किन्तु कई कारणों से निजामुल्मुल्क सन् १७२२ तक दिल्ली न जा सके।

पेशवा पद पर आरूढ़ हो कर बाजीराव ने पितृ प्रिय पूना प्रदेश को उन्नति के शिखर पर स्थापित करने के लिये बुद्धि चातुर्य का आश्रय ग्रहण कियां। उस समय पुरन्दर दुर्ग के किलेदार बापूदेव श्रीपति नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण नियुक्त थे।

बाजीराव ने बापूदेव श्रीपति को पूना के सूबेदार पद पर प्रतिष्ठित किया और रम्भा जी यादव नामक एक विद्या बुद्धि विशारद व्यक्ति को बापू जी के अधीनस्थ (सहायक सूबेदार) रख कर पूना ग्राम को 'नगर' रूप में परिणत करने का भार अर्पण किया।

रम्भाजी यादव ने घोर प्रयत्न से कई वर्षों के भीतर ही पूना ग्राम नगर रूपमें परिणित होगया। बड़ी २ सड़कें तथा विशाल अट्टालिकाएँ नगर की शोभा द्विगुणित करने लगीं। व्यवसायी और परिश्रमी शिलपकारों ने पूना नगर को और भी प्रख्यात कर दिया था। देश देशान्तर के व्यापारी पूना में पधारने लगे थे। इसलिये वाणिज्य का यह एक केन्द्र बन गया था।

इस प्रकार पूना ग्राम, पूना नगर में पूर्ण रूप से परिणत

हो जाने पर बाजीराव की आज्ञा से एक विशालगढ़ १७२६ से बनना आरम्भ हुआ। यह विशालगढ़ १० मील के घेरे में निर्माण किया गया था। उस समय की रीति क्रम के अनुसार यह गढ़ सुदृढ़ प्राचीर द्वारा प्रवेष्ठित किया गया जिसमें नौ बुर्ज और पाँच दीर्घकाय दर्वाजे थे। इस गढ़के निम्मर्णका कार्य १७२७ई० में पूर्ण रूप से समाप्त हुआ था।

उत्तर की ओर इस गढ़ का 'सिंहद्वार बनाया जा रहा है यह संवाद सुन कर महाराज शाहू अप्रसन्न हो गये और उन्होंने अत्यन्त नम्रता पूर्वक कहा-'दिल्ली की ओर सिंहद्वार होने से योद्धा लोग युद्ध वेशसे उसी प्रधान दर्वाजेसे निकलेंगे जिसमें दिल्ली की अवज्ञा होगी क्योंकि दिल्लीश्वर हमारे अधीश्वर हैं।'

पाठक यहाँ इतना लिख देना अत्यावश्यक है कि * महा-

---

* महाराष्ट्र वीर शिरोमणि महाराज शिवाजी के पुत्र शम्भा जी को बध करने के उपरान्त भी नरपिशाच औरंगजेब का कठोर हृदय शान्त नहीं हुआ। उस निर्दयी ने महाराष्ट्रपति के अन्तिम वंश चिन्ह को भी इस लोक से उठा देने का पूर्ण प्रण किया था परन्तु उसकी यह आन्तरिक इच्छा परम पण्डिता राजकुमारी पुत्री के कारण पूर्ण न हुई। कुमारी 'जेबुन्निसा' के एकान्त अनुरोध से महाराज शाहू अपने प्राण बचा सके थे। शाहजादी 'जेबुनिसा' फारसी की अद्वितीय पण्डिता थी, बड़े बड़े मौलाना, मौलवियों को उसकी बुद्धि के सामने अपना

राज शाहू की बाल्य तथा तरुण अवस्था औरंगजेब के शाही महल में ही व्यतीत हुई थी इस लिए उनके हृदय में दिल्ली के प्रति शाहू की विशेष श्रद्धा थी। इसी कारण से घोर प्रयत्न करने पर भी महाराज शाहू के जीवन पर्यन्त तक बाजीराव की इच्छा पूर्ण न हुई—उत्तर की ओर सिंहद्वार का कार्य असम्पूर्ण ही था। बाजीराव के पुत्र वीर बालाजी बाजीराव ने महाराष्ट्र पति के स्वर्गवासी होने पर सिंहद्वार का अपूर्ण कार्य सम्पूर्ण कर पितृदेव की आज्ञा का पालन किया।

बाजीराव के समय में यह प्रकाण्ड प्रासाद नाना भाँति के अनुपम वस्तुओं से सुसज्जित था। तथा नगर के जिस स्थान में यह गढ़ बनाया गया था। उसे अब 'शनिवार' पेठ कहते हैं तथा इसी के अनुसार यह प्रासाद 'शनिवार वाड़ा' के नाम से परिचित है। वर्तमान समय में यह 'शनिवार वाड़ा' भारत सरकार के आधीन है तथा इसका अधिकांश अंश नष्ट कर

मस्तक नीचा कर लेना पड़ता था। सम्राट औरंगजेब अपनी इस पुत्री को प्राण से भी बढ़ कर समझते थे। उन्होंने पुत्री की कोई भी प्रार्थना अपूर्ण नहीं रखी थी। परन्तु अन्त में एक ऐसी प्रतिज्ञा सम्राट द्वारा अपूर्ण होने से परम विदुषी कुमारी 'जेबुन्निसा' को आजन्म पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर कुंवारी रहना पड़ा था।

वहाँ कचहरी स्थापना की। ‡

हम अपने पाठकों के विनोदार्थ 'पूना वर्णन' का कुछ अंश उद्धृत किये देते हैं। मि० गार्डन साहेब ही सर्व प्रथम पूना में सन् १७३९ ई० में पधारे थे—

"भारतवर्ष में पूना एक अति उत्तम नगर है। इसके भाँति सुन्दर नगर कम दिखलाई पड़ते हैं। स्थान २ पर कूप विद्यमान हैं, प्रशस्त लम्बी २ सड़कें और गगनभेदी अट्टालिकाएँ नगर की शोभा को द्विगुणित करती हैं। स्थान २ पर वायुसेवनार्थ रमणीक उद्यान भी हैं। सर्व प्रकार से पूना नगर समृद्धिशाली और त्तमता सम्पन्न है। देशदेशांतरों के व्यवसायी यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं, नाना भाँति के फल फूल, भाँजी तरकारी आदि का प्रशस्त बाजार देख कर तो मुझे अत्यन्त आश्चर्य होता है। रेशमी, सूती, ऊनी तथा ज़री के एक से एक बहुमूल्य सुन्दर वस्त्रों को देख कर नेत्र और भी उत्सुकता से देखने लगते हैं। शिल्पियों की कला कौशल देख कर मैं स्तम्भित होगया था। संसार के सर्व प्रदेशों की वस्तुएँ पूना नगर में प्राप्त हो सकती

---

‡ बाजीरावकी मृत्युके पूर्व पूना नगर कहाँतक समृद्धिशाली हुआ था वह उस समय के एक यूरोपियन मिस्टर गार्डन साहेब के 'पूना वर्णन' पाठ से इतिहास प्रेमियों को भली भाँति ज्ञात होगा।

हैं। युद्ध विद्या के नाना भांति के शस्त्र अस्त्र तैयार करने के कारखाने विद्यमान थे। पूना नगर के समस्त प्राणीमात्र की ओर दृष्टि करने से ऐसा प्रतीत होता है कि नर नारीगण सुख सम्पदा के कृपामय गोद में लालित पालित हो रहे हैं। कोई भी ऐसा प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हुआ जो विद्या हीन हो तथा धनादि के लिये ग्रसित हो। शिक्षा का भी विशेष रूप से प्रबन्ध था। बालकों को विद्याध्ययन के साथ साथ शारीरिक विद्या का भी अध्ययन यथार्थ रूप से कराया जाता था। प्रत्येक युवक को तलवार आदि युद्ध क्रम सिखलाया जाता था। पूना नगर में कई एक अखाड़े हमने देखे जहाँ प्रातः काल और सायंकाल दो समय नगर के तरुण युवक एकत्रित होते थे और तलवार, भाला, कृपाण, कटारी, बन्दूक आदि चलाना सीखते थे। कुछ अखाड़ों में बालिकायें भी शारीरिक तथा युद्धादि क्रम अध्ययन करती हुई दृष्टिगोचर हुई थी। पूना नगर में धन कुबेरों की संख्या विशेष रूप से है। नगर के नर नारीगण सुवर्ण रत्न विजड़ित आभूषणों से अलंकृत दिखाई देते थे। पूना में तैयार की हुई वस्तुओं का प्रति दिन प्रदेशों में आने जाने का तांता लगा था। नगर चोर, दस्यु ठगादि उपद्रवियों के भय से मुक्त था। नगर में चारो ओर क्रान्तिकारी वीर पुरुषों को अवलोकन कर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। यहां का वाणिज्य व्यवसाय विशेष विस्तृत है। पेशवा का शासन नागरिकों के प्रति अत्यन्त

सुन्दर है तथा नागरिक अपने प्रिय पेशवा के लिये तन, मन धन से प्रस्तुत रहते हैं। वास्तव में पूना नगर सम्पूर्ण सुखद वस्तुओं से परिपूर्ण है।

७

नि ज़ामुल्मुल्क ने सन् १७२० ई० में महाराष्ट्रपति का चौथ और सरदेशमुखी देना बन्दकर विद्रोह का बीज बो दिया था। खानदेश के मत्त मुगलगण विद्रोही वृक्षके नीचे खड़े होकर महाराष्ट्र कर्मचारियोंके 'स्वत्व प्राप्ति' कार्यमें बाधा उपस्थित करने लगे। पेशवा बाजीराव ने विद्रोहियोंको दमन तथा चौथ सरदेशमुखी प्राप्त करने के निमित्त महाराष्ट्रवीर सेनानायक 'रामचन्द्र गणेश' को विशालसेना के साथ खानदेश पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। यद्यपि विद्रोही मुगलमण्डलने सेनानायक रामचन्द्र गणेश को चौथ और देशमुखी वसूल करने में कोई भी कसर उठा नहीं रखा था तथापि महाराष्ट्रवीर रामचन्द्र ने अपने विक्रम द्वारा विद्रोही मत्त मुगलगणों का मद चूर्ण कर महाराष्ट्रपति का सब कर वसूल किया। इसके पश्चात् बाजीराव ने 'उदयजी प्रमार' नामक वीर पुरुष को विशाल सेना के साथ इन दो प्रदेशों का कर प्राप्त करने के लिये भेजा और साथ ही साथ मालवा देश पर भी आक्रमण करने की आज्ञा दी। महाराष्ट्रगण तो पहले ही से मालवा प्रदेश में चौथ पद्धति प्रसारित करने का प्रयत्न करते आते थे क्योंकि

बाजीरावने सन् १७१६ ई० में दिल्ली दरबार से मालवा देश से चौथ प्राप्त करने का सनद प्राप्त किया था। अतः उन्होंने बाहुबल द्वारा उस कर को अदा कर लेने का प्रयत्न किया।

सेनानायक उदयजी प्रमारको बाजीराव ने मालवाके प्रत्येक राजा के नाम चौथ देने के सम्बन्ध में महाराष्ट्रपति के नाम से उक्त आदेशपत्र भी दिया था। वीर उदयजी ने बड़ी ही वीरता और कार्यपटुता से इस टेढ़े कार्य्य का सम्पादन किया। वे सन् १७२२ और २३ ई० का समस्त चौथ और सरदेशमुखी प्राप्त कर राजधानी सितारा लौट आये।

इसके पश्चात् पुनः मालवा में विद्रोह के अंकुर उत्पन्न होने लगे। इस बार उदयजी के साथ स्वयं पेशवा बाजीराव ने सन् १७२३ ई० के दिसम्बर मास में मालवा पर आक्रमण किया। बाजीराव का आक्रमण सुनकर ब्राह्मण राजा गिरिधरने जो कि पहले मालवा का सरदार था मुगलों का पक्ष अवलम्बन कर महाराष्ट्रवाहिनी की प्रगति को रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया था। परन्तु विशाल सागर की गगन चुम्बी लहरों की भांति महाराष्ट्रीय सेना आगे बढ़ती गई और अन्त में ब्राह्मण राजा गिरिधरजी को महाराष्ट्रपति से विद्रोही होने का फल चख कर अपने को आधीन कर देना पड़ा।

उस समय उत्तर भारत में प्रविष्ट होने के लिये मालवा देश, द्वारस्वरूप था। इसलिये बाजीराव ने मालवा को

सम्पर्णरूपसे हस्तगत करके क्रमशः उत्तर भारत में मुगलों द्वारा शासित प्रदेशों पर महाराष्ट्रीय पताका फहराने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। परन्तु प्रतिनिधि श्रीपतिराव के कारण अपनी इच्छा की पूर्ति न कर सके। वाजीराव को समस्त महाराष्ट्र वर्ग का प्रियपात्र देखकर श्रीपतिराव ईर्ष्या करने लग गये थे। उनकी आन्तरिक इच्छा यह थी कि पेशवा बाजीराव अपने विक्रम और कार्य-दक्षता का प्रकाश कर महाराष्ट्र पति के अधिक प्रियपात्र न बन सकें, और वे इस विषय में सदा चेष्टा भी करते थे। जब कभी बाजीराव महाराज शाहू के निकट उत्तर भारत में युद्धादि का प्रसंग छेड़ते तो प्रतिनिधि श्रीपतिराव नाना प्रकार के तर्कजाल द्वारा उनके प्रस्ताव का खण्डन करने में अग्रसर होते। बाजीराव की भांति महाराज शाहू का भी, उत्तर भारत को आधीनस्थ बना लेने का पूर्ण विचार था। परन्तु प्रतिनिधि श्रीपतिराव के कई बार मना करने पर उन्होंने राज्य के सूर सामन्त तथा सरदारगणों की राय लेने के हेतु एक विराट दर्बार की आयोजना की। इस राजसभा में समस्त उच्च पदाधिकारी उपस्थित थे।

महाराष्ट्रपति के सभापति का आसन ग्रहण करने पर प्रतिनिधि श्रीपतिराव ने वाजीराव के प्रस्ताव के प्रतिवाद में एक व्याख्यान दिया।

हम अपने पाठक तथा पाठिकाओं के विनोदार्थ प्रतिनिधि

श्रीपतिराव के व्याख्यान को नीचे उद्धृत कर देते हैं—

"पेशवा बाजीरावने उत्तर भारतमें युद्ध कर राज्य विस्तार करने का जो प्रस्ताव उपस्थित किया है वह विचार-पूर्ण नहीं, केवल जोश के अवेश में आकर इसका प्रसंग छेड़ा है। वर्त्तमान समय में क्या हमलोगों की इतनी भी शक्ति नहीं कि एक सामान्य विद्रोह का दमन कर सकें ? निज़ाम सेनासहित हमलोगों का द्वार-देश रोके हुए युद्ध की प्रार्थना कर रहा है और हमलोग इस यवन जाति से समर करने में भी असमर्थ हैं। इतना ही नहीं, वरन जो हमलोगों का प्राप्त चौथ और सरदेशमुखी सत्व निर्धारित है वह भी निर्विघ्नतापूर्वक प्राप्त नहीं होता है। ऐसी स्थिति में सम्मुख उपस्थित शत्रुओं का दमन न कर विदेश विजय करने में प्रवृत होना किसी भी भाँति उचित नहीं। सबसे पहले अपने अंगों को प्रबल बनाना हमारा परम कर्त्तव्य है। आजकल कोल्हापुराधिपति के साथ हमलोगों का बैर भाव बढ़ा हुआ है यह आप लोगों को भलीभाँति मालूम है तथा कर्णाटक प्रदेश में छत्रपति महाराज शिवाजी ने अपने भुजबल द्वारा जिस राज्य की स्थापना की थी उसका पुनरुद्धार करना अत्यावश्यक है। अतः इन सब सम्मुख आये हुए विपत्तियों को मार्ग से हटाये विना ही उत्तर भारत पर आक्रमण करना, महाराष्ट्र राज्यके लिये किसी भी प्रकारसे हितकर नहीं हो सकता। हमारे

शरीर में भी तरुण बाजीराव पेशवा की भाँति शौर्य साहस विद्यमान है, भारत में महाराष्ट्रीय पताका फहराने की प्रबल इच्छा है परन्तु यह समय विदेश में जाकर वीरता प्रकाश करने का नहीं वरन स्वदेशके उपद्रवोंके दमन करने का है। भलीभाँति समय का अवलोकन करते हुए किसी भी कार्य की ओर अग्रसर होने के पूर्व निज शक्ति का पूर्णरूपसे विचार कर लेना प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है। अतः इस समय उत्तर भारत के लिये युद्ध यात्रा करना हम किसी भी प्रकार से महाराष्ट्र राज्य के लिये हितकर समझकर न मानेगें।"

प्रतिनिधि श्रीपतिराव का व्याख्यान समाप्त होते ही बाजीराव ने उसके खण्डन में जो वक्तृा दी उसका सारांश इस प्रकार है—

"हमारे माननीय प्रतिनिधि महोदय का उपदेश अत्यन्त आश्चर्यजनक है। इस समय मुग़ल साम्राज्यरूपी महावृक्ष की विछिन्न शाखायें जीर्ण होकर धराशायी हो रही हैं। उस महावृक्ष को मूलसमेत नष्ट करने का यह सुअवसर है। ऐसा उत्तम अवसर पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि मुग़ल बादशाह भी इस समय महाराष्ट्रों के मुखापेक्षी हो गये हैं। वीर महाराष्ट्रों की सहायता से मुग़लपति अपने अधिकारों की रक्षा किया चाहते हैं। इस सुअवसर पर यदि महाराष्ट्र-गण यथोचित् पराक्रम प्रकाश करें तो निश्चय ही हम लोगोंके राज्य की वृद्धि होगी और हिन्दु साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

केवल निजामुल्मुल्क के भय से मुग़ल साम्राज्य को विजय करने का सुअवसर परित्याग कर देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। इसप्रकार भयभीत होने से भला कहीं राज्य की वृद्धि हो सकती है। कभी नहीं, आपलोगों को यह भली भांति मालूम है कि स्वर्गीय छत्रपति महाराज शिवाजी दौलताबाद में औरंगजेब की भांति भीषण शत्रु के रहते हुए भी बीजापुर तथा गोलकुण्डाके सुलतानों से युद्ध करनेके निमित्त चल पड़े थे। उन्होंने रणयात्रा से मुख नहीं मोड़ा। महाराज शम्भाजी की मृत्यु के पश्चात् महाराज राजाराम को भी अनेक बार धैर्य्य तथा साहस से काम लेना पड़ा था। स्वयम् महाराज शाहू जब मुगलों के द्वारा बन्दी हुए थे और समस्त महाराष्ट्र दिल्लीपति के अधीन हो गया था, उस समय "जञ्जी" दुर्ग की थोड़ी सेना के साथ महाराज राजाराम ने मुगल शासन को नष्ट भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया था। स्वदेश पर विपत्तियों के बादल मड़रानेपर भी उनके बीर हताश नहीं हुए। उन बीरोंने बड़ी बीरताके साथ औरंगाबाद आदि मुगल प्रदेशों पर आक्रमण किया। यदि वे लोग भी प्रतिनिधि महाशय की भांति भीरुता प्रकाश करते तो निश्चय किसी ओर के न रहते और कोई कार्य साधन भी न कर पाते। कोल्हापुराधिपति के साथ जब चाहे सन्धि करके कर्णाटक की सुव्यवस्था स्थापन की जा सकती है। रहा निजाम का भय, परन्तु निजाम से भयभीत होने का

कोई भी कारण नहीं है। जब हम प्रचण्ड शत्रु मुगलों से महाराज की मुक्ति और स्वदेश का उद्धार करने में पूर्णतया सफलता प्राप्त कर चुके हैं तब कोई कारण नहीं कि हमलोग पुनः भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित न कर सकें। मैं केवल महाराज की आज्ञा चाहता हूं। आज्ञा पत्र प्राप्त होनेपर नवीन सेना संगठित कर मुगल—साम्राज्य का सूर्य्य अस्त कर देने का प्रयत्न करुंगा। मदमत्त निजामुल्मुल्कको भी ध्वंस करनेका भार मैं ग्रहण करता हूं। परलोकगत छत्रपति महाराज शिवाजी की भी यह उत्कट इच्छा थी कि समस्त भारतवर्ष से यवन जाति का नाश हो और हिन्दू साम्राज्य स्थापित हो। परन्तु दैव के कोपसे अथवा महाराष्ट्रों के दुर्भाग्य से महाराज का देहान्त हो जाने के कारण कार्य पूरा न हो सका। परन्तु महाराष्ट्रपति शिवाजी के पुण्य प्रताप से मैं उस स्वर्गीय महात्मा के कार्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करुंगा और सफलता प्राप्त करुंगा। पितृदेव के साथ पर्यटन करते करते भली भांति उत्तर भारत की व्यवस्था स्वचक्षु से अवलोकन कर आया हूं। भारतवर्ष के राजों महाराजाओंके साथ पहले ही से हमलोगों की सन्धि हो चुकी है। इस समय हम महाराज की आज्ञा पाने पर कार्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। प्रतिनिधि महाशय को यदि कर्णाटक और कोल्हापुराधिपति का कार्यक्रम अव्यवस्थित जान पड़े तो वे राज्य के बड़े बड़े सर्दारों के साथ प्रस्तुत सेना लेकर पयाण करें और महा

राज की आज्ञा पाते ही मैं उत्तर भारत पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान करूँगा।'

इस प्रकार वीर बाजीराव की ओजस्विनी भाषा में उत्साहपूर्ण वीरोचित वक्तृता सुनकर समस्त सभासदों के हृदय में वीरता का श्रोत उमड़ उठा। केवल संभ्रान्त सूर सर्दार गणों ने ही नहीं, वरन स्वयं महाराज शाहू ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी भूरि भूरि प्रसंशा करते हुए कहा—"क्यों नहीं आखिर आप पेशवा बालाजी के ही तो पुत्र हैं। आप के समान बीर जिसके पक्ष में हों तो वह पक्ष उत्तर भारतही क्या हिमाचल के सदूर देशों पर भी महाराष्ट्रीय पताका फहरा सकता है, इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं।" आप मेरी आज्ञानुसार ससैन्य उत्तर भारत विजय हेतु सहर्ष जा सकते हैं। निजाम और कर्णाटक विजय का भार हमलोग देख लेगें।"

प्रतिनिधि श्रीपतिराव की वक्तृता का खण्डन होने से और बाजीराव की वीरतापूर्ण वक्तृता से राजदर्बार में उनकी प्रंशसा का पुल बंध गया था। इतना ही नहीं वरन सितारा नगर के समस्त स्त्री पुरुषों के हृदय पर उनके प्रभुत्व ने आसन जमा लिया था। इधर श्रीपतिराव के प्रति सूर सामन्त तथा नागरिकों का जो भाव था वह दिनों दिन घटने लगा। सितारा के राजदर्बार में प्रतिनिधि महाशयका जो प्रभुत्व और गौरव था,वह इस घटना से नष्ट होने लगा। स्वयम् महाराज

शाहू भी श्रीपतिराव से विमुख होकर पेशवा के पक्षपाती हो गये और अपनी आन्तरिक इच्छा की पूर्ति तथा राष्ट्रको पुष्ट करने के निमित्त उन्होंने बादशाही मुल्क विजय करने का 'सनद' पेशवा को प्रदान किया।

इस प्रकार राज दरबारियों से सम्मानित हो और महाराज शाहू द्वारा बहुमूल्य अलंकारिक वस्त्रादि तथा उत्तर विजय हेतु सनद प्राप्त कर बाजीराव पेशवा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि भी अत्यन्त विलक्षण और अथाह समुद्र की भांति थी। वे अदूरदर्शी पुरुष थे। उनके समान राजकार्य में परम प्रवीण पण्डित उस समय महाराष्ट्र देश में और कोई दूसरा नहीं था। उनका स्वभाव सागर की भांति गम्भीर तथा उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। वे विलासिता से कोसों दूर भागते थे। बाहरी आडम्बर से उन्हें विशेष घृणा थी। मानसिक शक्ति के साथ साथ शारीरिक शक्ति भी यथेष्ट थी। कभी कभी तो समर भूमि में चार २ पांच २ दिन तक घोड़े की पीठ पर ही व्यतीत हो जाते थे परन्तु घबराहट का लेशमात्र चिन्ह उनके चेहरे से प्रकट नहीं होता था।

८
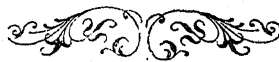
पेशवा के पुत्र

वीर बाजीराव पेशवा को सन् १७२१ ई० के नवम्बर मास में एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उस कुमार को बाल्यावस्था में सब लोग "नाना साहेब" के नाम से पुकारते थे। परन्तु महाराष्ट्रीय पद्धति के अनुसार पिता ने पुत्र का नामकरण अपने नाम पर रखा। वही होनहार युवक भविष्य में 'बालाजी वाजीराव के नामसे प्रख्यात हुआ। बाजीरावने जिस उद्देश्य की पूर्तिके लिये अपनी समस्त आयु व्यतीत की थी, उस अवशिष्ट उद्देश्य को उनके सुयोग्य पुत्र वालाजी वाजीराव ने अपने अमोघ विक्रम द्वारा बहुत अंशमें सिद्ध किया था। उनके समयमें भारतवर्ष के अधिकांश देशों में हिन्दू-सम्राज्य स्थापित था।

प्रसिद्ध वीर रघुनाथराव वाजीराव के द्वितीय पुत्र थ। इन दो कुमारों के सिवा वाजीराव ने दो पुत्ररत्न और प्रात किया था। इस युगल जोड़ी का नाम 'जनार्दन' और रामचन्द्र था। इन दो बालकों की मृत्यु बाल्यावस्था में ही

हो गई थी। अस्तु! रघुनाथराव भी अपने पिता के समान शूरवीर थे। उन्होंने निज विक्रम द्वारा 'अटक' नगर में माहाराष्ट्रीय पताका फहराकर पिता की प्रतिज्ञा को पूरा किया था। वाजीराव ने अपने इन दोनों पुत्रों को युद्ध विद्या के साथ साथ धर्मशास्त्र का भी अध्ययन पर्याप्तरुपसे करा दिया था।

वालाजी बाजीराव रघुनाथराव की अपेक्षा सब बातों में विशेष पण्डित थे। वह पिता के समान ही राजनितिज्ञ और वीर पुरुष थे। शैर्य और साहस तो उनमें कूट कूटकर भरा था। उनकी प्रकृति शान्त थी। किन्तु उनके भ्राता रघुनाथ-राव वीर साहसी योद्धा होने पर भी उनके समान और गुणों में कम थे। दैवगति से उनमें अदूरदर्शिता का अभाव था और विलासप्रियता के वशीभूत होने के कारण रघुनाथराव का अधिकांश जीवन कलंकित हो गया था। उन्हें इस कलंक-कालिमा के कारण जीवन की अन्तिम घड़ी तक निकट-वर्तीय सिन्धियों का कटुबचन सहना पड़ा था और साथ ही साथ महाराष्ट्र साम्राज्य के अधिकांश भागों से हाथ धोना पड़ा था।
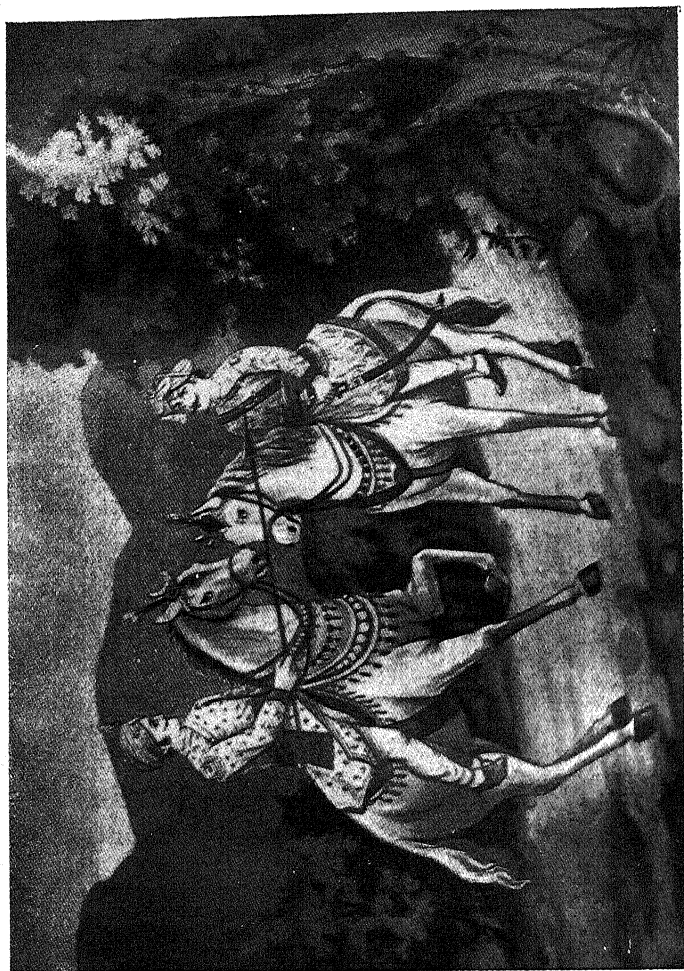
मल्हार राव ने भाले की नोक बाजीराव की छाती में अड़ा दिया।

६

नवीन सेना, कर्णाटक युद्ध, निज़ाम का लक्ष ।
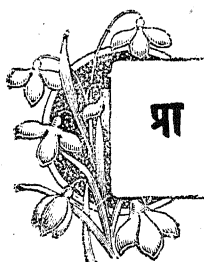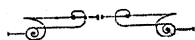
प्राचीन समय से उस समय तक महाराष्ट्रीय सेना के संयोजित करने में एक विलक्षण नियम निर्धारित था। नवीन महाराष्ट्र सैनिकों को सैन्य दल में सम्मिलित करने के कारण उन्हें 'लूट' में से कुछ भाग देना पड़ता था। परन्तु बाजीराव पेशवाने महाराष्ट्रपति की आज्ञा प्राप्त कर नूतन सैन्य संग्रहार्थ दो लाख रुपया ऋण लेकर प्राच्य प्रथा को हटाने के लिये सैनिकों को पर्याप्त वेतन देकर स्थायीरूप से सैन्य संगठित किया। बस उसी काल से उपरोक्त लूट का कुछ भाग देने का नियम नष्ट हो गया। अस्तु। उस नूतन सेना में अनेकानेक महावीर योद्धागण सम्मिलित थे जिन्होंने भविष्य में परम प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उनमें से ※ मल्हारराव होलकर, ‡ गोविन्दराव बुन्देला, $ राणोजी सेन्धिया, और उदयजी प्रमार आदि वीरोंके नाम उल्लेखनीय हैं।

※ मल्हार राव होलकर पूना नगर के अन्तर्गत नीरा नदी के तटवर्ती 'होल' ग्राम में रहते थे। उनके पिता श्रीग्राम नायक के

महाराष्ट्रपतिसे उत्तर भारत को विजय करनेका आज्ञा-पत्र प्राप्तकर वीर बाजीराव पेशवा ने वीर योद्धाओं के साथ मल्हारराव होलकर, राणोजी सेन्धिया, और गोबिन्दराव बुन्देला आदि प्रमुख वीरोंकी एक विशाल सैना लेकर 'मालवा' प्रदेश पर आक्रमण किया। मालवाधिपति गिरिधरराय ने अपनी शक्ति भर युद्ध किया। परन्तु वीर बाजीराव तथा उनके सहायक सेनापतियों ने राजा गिरिधरराय की सेना को पराजित कर उन्हें बन्दी बनाया। राजा गिरिधरराय के के बार-बार क्षमा प्रार्थना करने पर दयालु हृदय पेशवा ने उनको मुक्त करते हुए राज्य लौटा दिया था। परन्तु राजा गिरिधर के हृदय में बाजीराव के प्रति जो प्रतिहिंसा की अग्नि

अधीन कर्मचारी थे। उनके पूर्वज भेड़ों को पालकर उदर निर्वाह करते थे। मल्हारराव बचपन में भेंड चराया करते थे। युवा होने पर वे महाराष्ट्रीय सेना में भर्ती हुए। नवयुवक मल्हारराव की अलौकिक बुद्धि तथा अतुल पराक्रम देखकर बजीरावने उन्हें अपनी सेना में प्रविष्ट कर लिया। इसके पश्चात् मल्हारराव अपने प्रचण्ड पराक्रम द्वारा दिनों दिन उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होने लगे और अन्त में वे एक राज्य के अधीश्वर हो गये।

‡ राणोजी सेन्धिया, ग्वालियर के सेन्धियावंश के प्रथम पुरुष हैं। पहले वह मुगलों के आधीन रहकर कार्य करते थे। दुनों दिन मुगलों की अवनित और महाराष्ट्रों की उन्नति देखकर वह पेशवा बालाजी विश्वनाथ का पक्ष अवलम्बन कर घोड़ों की देख भालका कार्य

सुलगी हुई थी वह शान्त नहीं हुई थी। अतः उन्होंने पुनः बगावतकर महाराष्ट्रपति की निर्धारित चौथ देने से मुख मोड़ लिया। इसबार पुनः वीर वाजीराव ने उपरोक्त सेनापतियों के साथ मालवा पर आक्रमण किया और राजा गिरिधररायको पूर्णतः पराजित कर विजय लाभ किया। मालवा विजय करने के साथ ही साथ वाजीराव को आशा से अधिक धन प्राप्त हुआ। इस युद्ध में उपरोक्त सेनापतियों ने अद्भुत पराक्रम दिखाया था। इस कारण प्रसन्न होकर वीर पेशवा ने पुरस्कार स्वरूप उन्हें मालवा प्रदेश का 'चौथ' और

करनेलगे। राणोजी सेन्धियाके साथ उनका विशेष वन्धुत्व था इस कारण सेन्धिया की प्रार्थना द्वारा वह उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। परन्तु उनके जीवन का अधिकांश दिन भृत्यभाव से ही व्यतीत हुआथा

$ गोविन्दराव बुन्देला रत्नागिरि जिला के अन्तर्गत 'नेउर' ग्राम के निवासी थे। इनके पिता लेखक का काम करते थे। अचानक पिता की मृत्यु होने से उन्हें अन्न जल के लिये विशेष कष्ट उठाना पड़ता था। अन्तमें वे वाजीराव के शरण में आये और सेवा करने लगे। उन्होंने अपनी कार्यदक्षता और साहस दिखाकर पेशवा को प्रसन्न किया। वाजीरावने उनको सूबेदार के पद पर प्रतिष्ठित किया। वीर गोविन्दराव जीवन पर्यन्त पेशवा के प्रियपात्र बने रहे। इस महावीर की मृत्यु पानीपत के युद्ध में हुई। इन्हीं तीन व्यक्तियों ने तन मन से वाजीराव की सहायताकर राजा गिरिधरराय को समर गण में परास्त किया था।

सरदेशमुखी का अधिकार दे दिया तथा सेना के उदर निर्वाह के निमित्त राज्य के तृतीय भाग की आय का प्रायः आधा अंश ख़र्च करने की आज्ञा दे दी। यह सन् १७२५ ई० की घटना है।

बाजीरावके शासनकाल में मालवा के निवासी महाराष्ट्र शासनकर्त्ता के विशेष भक्त हो गये थे इसी कारण महाराज शाहू अल्प दिनों में ही समस्त मालवा प्रदेश को अपने आधीन कर सके थे।

क्षत्रपति महाराज शिवाजी ने अपने अमोघ विक्रम द्वारा कर्णाटक प्रदेश को अपने अधिकार में कर लिया था। परन्तु जब निजाम दक्षिण भारत की सूबेदारी पद पर नियुक्त हुए तो उन्होंने कर्णाटक को अपने अधिकार में कर लिया। उस प्रदेश को यवनाधिपतिसे मुक्त करने के लिये प्रतिनिधि श्री पतिराव की विशेष इच्छा थी। सन् १७२० ई० से ही निजा-मुल्मुल्कके करतलगत से कर्णाटक को उद्धार करने की चेष्टा हो रही थी। अनेक बार महाराष्ट्रीय सेनापतियों ने निजाम के साथ युद्ध छेड़ा परन्तु व्यर्थ। अन्तमें सन् १७२६ ई० में राज्य प्रतिनिधि ने समस्त सेनापतियों को लेकर एक ही साथ निजाम पर आक्रमण करने का विचार किया।

जब बाजीराव पेशवा मालवा प्रदेश विजय कर महाराष्ट्र-पति के सन्निकट पहुँचे, तो महाराज शाहूने श्रीपतिराव के अनुरोध से उन्हें कर्णाटक प्रदेश को अपने राज्य में सम्मिलित

करने के लिये रणदुन्दुभी बजाने की आज्ञा दी। बाजीराव ने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा था कि, यह समय कर्णाटक विजय करने का नहीं जान पड़ता है। अवसर प्राप्त होने पर महाराजकी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी।"

बाजीराव के राजनीति पूर्ण विचार का कुछ भी मूल्य नहीं हुआ। अर्थात् प्रतिनिधि महाशय के विशेष अनुरोध से तथा महाराज शाहू के बार-बार कहने पर, विवश होकर वीर पेशवा ने कर्णाटक विजय करने के हेतु युद्ध यात्रा की और अपने अमोघ विक्रम द्वारा समस्त देश में 'चौथ' और सरदेश-मुखी प्राप्त कर कर्णाटक का अधिकांश भूभाग पुनः प्राप्त किया। परन्तु उस युद्ध में महाराष्ट्रपति के अधिक सैनिकों को प्राणा-हुति देनी पड़ी थी।

इस युद्ध में वीर पेशवा के अद्भुत पराक्रम को देखकर शत्रुओं की सेना थर्रा उठी। उनके वीरतापूर्ण तेजस्वी मुख-मण्डल तथा चमचमाती हुई दोधारी तलवार का दर्शन करते ही निजाम को पसीना हो आया। उसने बाजीराव द्वारा पराजित होकर महाराष्ट्रीय शक्ति का पूर्ण परिचय प्राप्त किया। उस समय तक दो एक छोटे-मोटे युद्धों में निज़ाम के कुछ सेनापति पेशवा द्वारा धराशायी हुए थे। परन्तु बाजीरावने भूभाग पर अधिकार नहीं किया था। किन्तु इस बार कर्णाटक के भीषण युद्ध में निज़ाम को विशेषरूप से क्षतिग्रस्त होकर अधिकांश भूभाग खोना पड़ा। साथ ही

साथ उन्हें महाराष्ट्र सैन्य के सर्वस्व, वीर पेशवा का पूर्ण परिचय प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था।

कर्णाटक युद्ध के पश्चात् बाजीराव पेशवा निजाम के प्रचण्ड शत्रु बन बैठे। निजाम को पूर्णरूप से पराजित करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य बन गया। इधर निजाम को इन प्रचण्ड शक्तिशाली महाराष्ट्र वीरों की उन्नति में बाधा डालना भी नितान्त आवश्यक जान पड़ा। क्योंकि तत्कालीन कतिपय महाराष्ट्रीय वीरों और बाजीराव पेशवा के अतिरिक्त अन्य कोई भी निजाम को अभ्युदय के शिखर से घसीटनेवाला न था। इतने दिन तक तो निजाम मियाँ दिल्ली के दर्बार में प्रधानपद लाभ करने के फेर में पड़े थे। परन्तु कर्णाटक के युद्ध में विकट थप्पड़ खाने से उनका वह विचार एक बारगी उलट गया। वह दिल्ली दर्बार में प्रधान के पद को लक्षित कर बादशाही ठाठ-बाट के साथ, जीवन के आनन्द का जो स्वप्न देख रहे थे उसे उन्हें एकाएक भावी संकट के आजाने से भूल जाना पड़ा। सन् १७२२ ई० में दिल्ली दर्बार की शोचनीय अवस्था देखकर निजाम को बादशाह के प्रधान मन्त्री (वज़ीरे-आजम) का पद प्राप्त करना हितकर नहीं जान पड़ा। अतः थोड़े ही दिनों में उन्होंने मन्त्री पद परित्याग कर दक्षिणदेश में अपनी महत्वाकांक्षा सिद्ध करने के हेतु एक नवीन स्वतन्त्र राज्य स्थापित करनेकी प्रतिज्ञा की। सब

से पहले उन्होंने दिल्लीपति के विरुद्ध्य विद्रोह किया। तदु-उपरान्त अपने को दक्षिण देश का स्वतन्त्र राजा होने की घोषणा की। दिल्लीश्वर का तो उन्हें तिलमात्र भी भय न था। उनको यदि कुछ भय था तो वह महाराष्ट्रीय वीरगणों का था और वास्तव में यदि वीर महाराष्ट्र पेशवा विकट विघ्न स्वरूप खड़े न होते तो दक्षिण देश में निज़ामका आधिपत्य हो जाने में कोई कसर नहीं रह जाती। अस्तु ! निज़ाम बहादुर ने सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर कट्टर महाराष्ट्र शत्रुओं का अधःपतन करना निश्चय किया। यही निज़ाम के जीवन का अन्तिम लक्ष था।

—*❀❀❀❀❀❀*—

१०

निज़ाम का कौशल, पालपोखड़ का युद्ध, निज़ाम की दुर्दशा, वाजीराव का अपूर्व साहस, हिन्दू राजा छत्रसाल का निमन्त्रण।
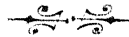
महाराष्ट्रीय सेना, मालवा विजय कर गुजरात और उत्तर भारत को आधीन करने के लिये अग्रसर हुई देखकर निज़ामुलमुल्क मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अनुमान किया था कि यदि महाराष्ट्र वीरों की दृष्टि उत्तर भारत की ओर रहेगी तो वे अधिक संख्या में सेना एकत्रित करने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त बादशाह और पेशवा में युद्ध ठन जाने से महाराष्ट्रीय सेना बहुत कुछ दुर्बल और शक्तिहीन हो जायेगी। उस समय अपनी मनोवाञ्छित इच्छा फलीभूत होने की संभावना हो सकती है।

इसप्रकार निजाम अपने वभवशाली होनेका मन ही मन ख़याली पुलाव पका रहे थे कि, अचानक कर्नाटक के घोर संग्राममें प्रचंड महाराष्ट्रीय शक्ति का अवलोकनकर उन्हें बाजीराव के शक्ति का परिचय मिल गया। जिन महाराष्ट्र वीरोंको

वह दुर्बल और जर्जर समझ रहे थे उन्हीं से निज़ाम मियां को पराजित होना पड़ा था।

दिल्लीश्वर से 'चौथ और सरदेशमुखी' की सनद मिल जाने के कारण महाराष्ट्रीय सेना अपने भुजबल द्वारा उपरोक्त कर वसूल करने के निमित्त प्रतिवर्ष निज़ाम के राज्य में पदार्पण करती थी। निज़ामुल्मुल्क को उसका यह व्यापार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने सोचा कि, प्रतिवर्ष कट्टर शत्रु 'चौथ' आदि वसूल करने के साथ ही साथ राज्य की स्थिति को भी देख जाते हैं। यदि यह बन्द नहीं किया जायगा तो अवश्य महाराष्ट्र लोग सहज ही में राज्य प्राप्त कर लेंगे। ऐसा विचार कर चतुर निज़ाम ने इस विडम्बना को रोकने के लिये महाराष्ट्र पति के पास एक करुणाजनक पत्र लिखा।

निज़ाम को यह भलीभांति अवगत था कि भेजे हुए पत्र में लिखे हुए प्रस्ताव को पेशवा कभी भी स्वीकार नहीं करेंगें। इस लिये उसने सितारा में वीर बाजीराव की अनुपस्थिती में महाराज शाहू के सन्निकट एक प्रस्ताव पेश किया वह इस प्रकार है–

"यदि महाराष्ट्रपति हमारे (निज़ाम के) समस्त राज्य से 'चौथ और सरदेशमुखी' कर उठालें तो हम 'इन्दापुर' के निकटवर्तीय कई ग्राम जागीरस्वरूप भेंट करेंगे और साथ ही साथ कई करोड़ नकद रुपया भी प्रदान करेंगे।"

चतुर निजामुल्मुल्क ने महाराज शाहू के निकट केवल

प्रस्ताव ही नहीं भेजा वरन् उन्होंने राजसभा में अपने प्रस्ताव का समर्थन करा लेने के लिये द्रव्य द्वारा राजप्रतिनिधि श्रीपतिराव को भी अपने पक्ष में कर लिया था। (यहाँ यह कह देना अयुक्त न होगा कि निज़ाम और राजप्रतिनिधि महाशय का यह गोपनीय व्यापार किसी को अवगत न था)।

* श्रीपतिराव ने निज़ाम द्वारा विशेष धनराशि प्राप्तकर लोभ के वशीभूत हो उचित अवसर का सम्पादन किया। अर्थात् निज़ाम के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए महाराष्ट्र-पति को यह सलाह दी कि, निज़ाम के प्रस्तावानुसार कार्य करने से महाराष्ट्र-मण्डल का विशेष लाभ होगा तथा सहज ही में एक प्रचण्ड शत्रु अपना मित्र हो जायगा।

---

* शोक ! जिस राज्य में बाजीराव ऐसे वीर, यवन जाति एवम् मुगलों के कट्टर शत्रु होकर अनेकों समरभूमि की असहनीय पीड़ाओं को भोगते हुए भी स्वदेश के अतिरिक्त मुगलों द्वारा शासित अन्य राज्यों पर महाराष्ट्रीय पताका फहराने के लिये दिनरात प्राण हथेली पर लेकर और समस्त सुख ऐश्वर्य को लात मारकर चार २ पांच २ दिन तक कच्चा चना चबाते हुए युद्ध भूमि में रणचण्डी मचाने वाले वीर थे; उसी राज्य में थोड़ी सी धन राशि के लोभ में पड़कर राज्य को शत्रुओं के हाथ सौंप देनेवाले राज प्रतिनिधि श्रीपतिराव ऐसे लोभी और पामर भी मौजूद थे। हिन्दुओं के राज्य के विलुप्त होने का यही एकमात्र कारण था।

अस्तु, महाराज शाहू ने प्रतिनिधि के बार-बार कहने से निज़ाम का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

जिस समय निज़ामुल्मुल्क का प्रस्ताव महाराष्ट्र के जयचन्द श्रीपति के सम्मुख उपस्थित था और राज नीतिज्ञ श्रीपति राव उनके प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बार-बार महाराज शाहू को उक्त प्रस्ताव पास करने का अनुरोध कर रहे थे, उसी समय बाजीराव ने औरङ्गाबाद के समीप सितारा राजधानी में प्रवेश किया। महाराज ने निज़ाम का भेजा हुआ प्रस्ताव पेशावा के सम्मुख उपस्थित किया। जिसे देख कर कूट-बुद्धि निज़ाम का कौशल उन्हें ज्ञात हो गया और उन्होंने नम्रता पूर्वक महाराष्ट्रपति को समझाते हुए कहा—"यदि किसी भी प्रकार से निज़ाम के राज्य से चौथ और सरदेश मुखी का स्वत्व उठा दिया जायगा, तो उक्त राज्य से हम लोगोंका शासन नष्ट हो जायगा और यवन जाति निर्भय हो जायगी। साथ ही साथ निज़ाम के हृदय से महाराष्ट्र पति का भय न्यून होकर उन्हें महाराष्ट्र वीरों के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचने का अवसर प्राप्त होगा। इस समय हम लोगों का कट्टर शत्रु एक मात्र निज़ाम ही है। चौथ और सरदेश-मुखी आदि पद्धति उठा देने से वह निष्कंटक हो जायगा। इसी कारण उसने यह प्रस्ताव महाराज के पास भेजा है। अतः ऐसे प्रस्ताव को पास कर देना कभी भी उपयुक्त न होगा।"

कहना व्यर्थ है कि महाराष्ट्रपति ने बाजीराव के विचारानुसार ही निज़ाम का प्रस्ताव अस्वीकार कर लौटा दिया और प्रस्ताव के समर्थन में दिलचस्पी लेने के कारण, राज्य मन्त्री श्रीपतिराव की ओर से उनके मन में अश्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

इस प्रकार निज़ाम का चलाया हुआ पहला तीर लक्ष पर न पहुँच सका। अन्त में उसके हृदय में एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ। उस चतुर राजनीतिज्ञ ने कोल्हापुराधिपति शम्भाजीका पक्ष ग्रहण कर महाराष्ट्र राज्य में विवादरूपी अग्नि प्रज्वलित करने की चेष्टा करना आरम्भ की।

उस समय महाराष्ट्रपतिके राज कर्मचारीगण निजामी राज्य में चौथ और सरदेशमुखी का कर वसूल करने को उपस्थित हुए। उस समय निजाम ने उनसे कहा कि, कोल्हापुराधिपति एवम् महाराष्ट्रपति दोनो हमारे राज्य से कर प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। अतः जब तक यह निर्णय न होगा कि दोनो में से कौन महाराष्ट्र राज्यका वास्तविक अधिपति है तब तक हम चौथ और सरदेशमुखी का प्राप्त धन किसी को भी न देंगे।"

इस नूतन चक्र द्वारा निज़ाम ने शाहू के राज कर्मचारियों को अपने राज्य से लौटा दिया। पेशवा को उनका यह नवीन राजनैतिक कौशल ज्ञात न था। राज कर्मचारियों द्वारा निज़ाम की कूटनीति युक्त बात सुनकर बाजी-

राव ने हलकारे द्वारा उसे यह कहला भेजा कि—"जिसके नाम, चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने की बादशाही 'सनद्' वर्त्तमान है, वही राज्य, चौथ आदि प्राप्त करने का अधिकारी है। इसमें किसी के हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने आपके लक्ष को भलीभांति जान लिया है। सम्भाजी और हम लोगों को युद्ध में प्रवृत्त कराकर दोनों पक्षोंका विनाश करनाही आपका मुख्य उद्देश्य है। परन्तु आपका यह उद्देश्य कभी फलीभूत नहीं हो सकता।

महाराष्ट्रपति की आज्ञा प्राप्त कर, चौथ और सरदेश मुखी का कर वसूल करने के लिये बाजीराव पेशवा ने राज्य के चुने-चुने वीरों को एकत्रित कर के सन् १७२७ ई० के सितम्बर मास में निज़ामुल्मुल्क के विरुद्ध युद्ध यात्रा की। उधर निज़ाम ने भी महाराष्ट्रीय सेना तथा पेशवा की भवानी तलवार का सामना करने के निमित्त औरंगाबाद में

※ पेशवा के कर्णाटक की ओर अग्रसर होनेपर निजामुल्मुल्क ने अपने विश्वासी सर्दारों के हाथ उस देश की रक्षा का भार सौंप कर स्वयम् महाराष्ट्र देश के उत्तर भाग पर चढ़ाई करने का संकल्प किया था। इसी कारण बाजीरावको कर्णाटक युद्ध समाप्त होते ही निजाम के औरङ्गाबाद स्थित प्रतिनिधि के विरुद्ध सेना लेकर आना पड़ा था। इसी समय बाजीराव की अनुपस्थिति में उपरोक्त प्रस्ताव महाराष्ट्रपति के सम्मुख उपस्थित किया था।

डेरा डाल दिया। इसके पूर्वही उन्होंने कोल्हापुराधिपति सम्भाजी को गुप्तरूप से सैन्यदल के आगे नियुक्त किया था।

शत्रुसेना अवलोकन करते ही वीर पेशवा ने भूखे सिंह की भांति निज़ामी सेना पर आक्रमण किया। वाजीराव के असाधारण रण-कौशल से और भवानी तलवार की भयंकर मार से मियाँ निज़ाम को छठी के दूध की याद हो आयी। अस्तु ! वाजीराव ने सर्व प्रथम टिड्डी दल की भाँति निज़ाम के अधीनस्थ 'जालना' प्रदेश में प्रवेश कर मुगलदल को पीसते हुए लूट मार करनी आरम्भ की। उन्हें रोकने के लिये निज़ाम का एक सेनापति इवाज़ खां कुछ सेना लेकर अग्रसर हुआ। परन्तु वह पराजित हो भाग खड़ा हुआ। मार्गमें मुसलमानों के छोटे-छोटे गाँवों को नष्ट-भ्रष्ट करते हुए वाजीराव ने बुढ़ानपुर और खानदेश में प्रवेश किया। इस समाचार को सुनकर निज़ाम ने अपनी समस्त सेनाको एकत्रित कर बुढ़ानपुर के रक्षार्थ कूच किया।

निज़ामी सेना बुढ़ानपुर में एकत्रित हुई है यह देख कर पेशवा के विचार में एक नवीन युक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने इने-गिने रण-पारङ्गत सेनापतियों के साथ कुछ सेना उनका पराभव करनेके लिये छोड़ दी और स्वयम गुजरात पर आक्रमण कर वहाँ के सूबेदार 'सर बुलन्द खाँ' को परास्त कर समस्त गुजरात के धन और रत्नों को लूट कर उसे कंगाल बना डाला।

इधर मीयां निज़ाम बुढ़ानपुर में पेशवा की प्रतिक्षा करते २ थक गये। कई दिनों के पश्चात् उन्होंने बाजीराव का गुजरात आक्रमण और देश को कंगाल बना डालने का समाचार सुनकर वीर बाजीराव की परम प्रिय पूना नगरी को विध्वंस करने के लिये अपने सेनापतियों को आज्ञा दी। प्रधान सेनापति ने निज़ाम की आज्ञा होते ही दक्षिण की ओर प्रयाण किया।

गुप्तचरों द्वारा इस संम्बाद को सुनकर पेशवा ने अपनी सेनाको गुजरात छोड़ कर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। मार्ग में मुगलों द्वारा शासित नगर-ग्राम आदि को लूटते और दग्ध करते हुए अहमद नगर के निकट पहुँच कर उन्होंने निज़ामी सेना के पृष्ठ भाग पर घोर आक्रमण किया। बाजी-राव को स्वयम् अपनी सेना का पृष्ठ भाग नष्ट करते देख निजाम को पूना ध्वन्स करने का विचार परित्याग कर सन्मुख युद्ध करना पड़ा। रण-कुशल पेशवा ने निजाम से विविध भांति का युद्ध करते-करते और सेनाको पीछे खदेड़ते हुए गोदावरी नदी के तटवर्ती 'पाल पोखड़' नामक एक महान् विकट स्थान में ले जा कर चारों तरफ से घेर लिया।

इस प्रकार महाराष्ट्रियों का घेरा पड़ा हुआ देख कर निज़ा-मुलमुल्क प्राणपण से युद्ध करने लगे। एक ओर महाराष्ट्र वीरों का गगन भेदी 'हर हर महादेव का नाद और दूसरी ओर 'मुगल दल के 'अल्लाहो अकबर' की गूँज से

दि-दिगन्त कम्पायमान हो गया। तोपखाने के साथ तोपखाना, अश्वरोहियों के साथ अश्वारोही, पैदल के साथ पैदल' इस प्रकार दोनों सेनाएँ एक दूसरी से भिड़ कर अपनी विजय के हेतु रण--चण्डी मचाने लगीं। यहाँ इतना कह देना अत्यावश्यक है कि इस महायुद्ध में बहु संख्यक महाराष्ट्र वीर एकदम स्वर्ग को सिधारे थे। किन्तु वीर पेशवाने धैर्य नहीं छोड़ा। स्तम्भ का भांति रणभूमि में डँटे रह कर निजामी सेना को और भी पीड़ित करने के हेतु उन्होंने निकट के ग्रामों का मार्ग बन्द कर दिया। जिससे निजामी सेना ग्रामों से किसी भी प्रकार की सहायता खाद्य, वस्त्र, अस्त्र, शस्त्र, या और कोई युद्धो पयोगी वस्तुओं को न पा सके। इन दोनों सेनाओं का जो संघर्ष हुआ, उसमें महाराष्ट्रीय सेना का विशेष भाग नष्ट होने पर भी पेशवा ने धैर्यपूर्व्वक विकट रण-पाण्डित्य दिखलाकर मियाँ निजामुलमुल्क का छक्का छुड़ा दिया।

इस महायुद्ध में-निज़ामी सेना के साथ, ससैन्य कोल्हा पुराधिपति, दल-वल सहित सेनापति चन्द्रसेन यादव, राव रँभा निम्वालकर आदि सेनापतिगण भी उपस्थित थे। इन सेनापतियों की सहायता से पेशवा को परास्त करने के लिये निज़ाम बार-बार सम्भाजी से प्रार्थना करने लगे। इस विषय पर निजाम के सेनापतिगण और महाराष्ट्र सेना पतियों की आपुस में सलाह होने और तर्क-वितर्क होने

के पश्चात् समस्त सेना में फूट का बीज उत्पन्न होने लगा। उस समय सेनापति चन्द्रसेन यादव ने तीव्र स्वर में कहा—"मेरी सेना की अपेक्षा मुगल सेना की संख्या अधिक है। किन्तु महाराष्ट्रों की भांति इन लोगों में साहस नहीं है, ऐसी अवस्था में मैं अकेला क्या कर सकता हूं ?"

इसके पश्चात् कोल्हापुराधिपति ने कहा—"एक तो पूर्व से ही मेरी सेना की सँख्या थोड़ी है। फिर उसमें भी कुछ सैनिकों ने गुप्तरूप से पेशवा का पक्ष अवलम्बन कर लिया है। इसका मुझे दृढ़ सन्देह हो रहा है। अतः इन लोगों को हमारा प्राप्त द्रव्य प्रदान मत करना।"

सम्भाजी का उत्तरभाषण श्रवण कर उनके राज कर्मचारियों ने कहा—"धनराशी को राजा सम्भाजी के स्वाधीन कर देने से वह विलास वासना में खर्च कर डालेंगे और हमें अन्न-वस्त्र के लिये रोना पड़ेगा तथा वेतन चढ़ा रहने से समस्त सैनिकगण विद्रोही बन जायँगे।"

इस प्रकार सम्भाजी तथा उनके सेनापतिओं का मनोभाव श्रवण कर निज़ाम बहादुर ने अत्यन्त दुःखित होते हुए कहा—"बाजीराव महाराष्ट्र वीर हैं और आप लोग भी महाराष्ट्र वीर हो। किन्तु बाजीराव के रण-कौशल का ध्यान न कर स्वयम् विपत्ति ग्रस्त हुए हो, और हमें भी इस भयंकर जाल में फंसाया है। यदि मेरी सहायता नहीं करनी थी तो पहिले ही कह देना था। ओफ्, धोका ! महान् धोका !! तुम

लोगों पर विश्वास करने से ही मेरी ऐसी दुर्दशा हुई। चारों ओर से शत्रु ने घेर कर ग्राम में जाने का मार्ग भी बन्द कर रखा है। युद्ध की सामग्रियां भी धीरे २ घट रही हैं। किस भांति रक्षा हो सकेगी 'अल्लाह' ही जाने।" इतना कह कर मीयाँ निज़ाम विचार सागर में गोता लगाने लगे।

इस प्रकार वृथा वाद-विवाद में कई दिन व्यतीत हो गये। परन्तु इस विपत्ति से उद्धार पाने का उपाय किसी भी चक्र-चूड़ा मणि के मस्तिक में न आया। सागर की भांति चतुरंगिणी सेना दिन-प्रति-दिन खाद्य पदार्थ के अभाव से दीन दुर्बल-होने लगी और साथ ही उनकी युद्ध सामुग्री भी समाप्त हो चली थी। इधर बाजीरावने शत्रु सेना को दुर्बल देख कर महाराष्ट्रीय सेना को पूर्ण वेगसे आक्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। फिर क्या पूछना था ? पेशवा के महाराष्ट्र वीरों की बन्दूकों से सन-सनाती हुई गोलियां उड़-उड़ कर शत्रु पक्ष को ध्वंस करने लगीं। समस्त निज़ामी सेना में हा हाःकार मच गया। और उनके सैनिक अस्त्र-शस्त्र फेंक कर भाग खड़े हुए।

यह देख निजामने विवश होकर पेशवा से सन्धि की प्रार्थना की।

यद्यपि ऐसे समय में महाराष्ट्र सेनापतियों ने पेशवा से निजाम को सँपूर्ण रूप से नष्ट करने का आग्रह किया, परन्तु वीर बाजीराव ने उनके प्रस्ताव पर असम्मति प्रकट

करते हुए कहा—"इस समय निजाम हमारे शरणागत हुए हैं। विपद्ग्रस्त शत्रु को अभय दान देकर उस पर फिर आक्रमण करना, या तलवार उठाना वीर पुरुष को शोभा नहीं देता। यह कार्य सर्वथा धर्म के विरुद्ध है। अतः शरणागत निजाम को रसद पानी से सहायता कर सन्धि कर लेना ही हमारा कर्त्तव्य है। इस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं।

इसके उपरान्त बाजीराव ने एक सन्धि पत्र तय्यार किया। वह इस प्रकार है—

(१) निजामुल्मुल्क शम्भाजी का पक्ष त्याग करें।

(२) जो राज कर्मचारीगण चौथ और सरदेश मुखी आदि प्राप्त करने के हेतु प्रति वर्ष निज़ाम के राज्य में जाते हैं उनकी रक्षा के लिये निज़ाम बहादुर यथावश्यक दुर्ग महाराष्ट्रपति को प्रदान करेंगे।

(३) विगत वर्षों का जो चौथ और सरदेश मुखी स्वत्व बाकी रह गया है वह बहुत जल्द निज़ाम बहादुर पाई-पाई अदा करें।

(४) इस वर्त्तमान युद्ध का भी रत्ती २ खर्च निज़ाम महोदय को देना पड़ेगा।

उपरोक्त संधिपत्र बाजीराव ने लिखकर निजामुल्मुल्क के पास भेजा। उसने सन्धि पत्र की शर्त्तों को स्वीकार करते हुए वीर पेशवा को अपने शिविर में आने की प्रार्थना

की। वीर साहसी पेशवा केवल दो तीन वीरों के साथ भीषण शत्रु निज़ाम बहादुर की प्रार्थना स्वीकार कर शिविर (कैम्प) में गये।

निजामुल्मुल्क ने वीर पेशवा के साहस की परीक्षा करने के लिये कुछ मुगल सैनिकों का एक दल शिविर में गुप्त रूपसे छिपा रखा था। उपयुक्त अवसर पाकर निज़ाम ने छिपे हुए सैनिकों की ओर कुछ संकेत किया। संकेत पाते ही कई सौ मुगल सैनिकों ने वीर बाज़ीराव को चारों ओर से घेर कर बध करने के लिये चमचमाती हुई तलवारें म्यान से खींच ली। उस समय निज़ाम बहादूर ने अट्टाहास करते हुए बाजीराव से कहा—"बाजीराव! इस समय आप हमारे बन्दी में हैं। यदि सैनिकों द्वारा आपका वध हो जाय तो इस समय आपकी सहायता कौन करेगा?

क्रूर मुगल सैनिकों से, चारों ओर से घिर जाने पर भी पेशवा ने साहस का त्याग नहीं किया। उन्होंने एक बार अपने चारों ओर के सैनिकों पर दृष्टि डाली, और तुरन्त ही म्यान से भवानी तलवार खींचते हुए सिंह की भांति गर्ज कर बोले—"जब तक हमारे हाथ में तलवार है तब तक इतने ही क्या, लाखों सैनिकों से अवरुद्ध होनेपर भी पेशवा किंचित मात्र धैर्य नहीं छोड़ सकता। इन अल्प सैनिकों से अपनी आत्मरक्षा करने में मैं सर्वथा समर्थ हूँ। परन्तु आप ऐसे वीर पुरुष एक वीर की अभ्यर्थना करने के हेतु

आह्वानकर उसके साथ विश्वास घात करेंगे, यह सब नेत्रों से देखने पर भी हम विश्वास नहीं कर सकते। किन्तु यदि सत्यतः आपके द्वारा ऐसा निन्दनीय कार्य घटे तो याद रखिये हमारा दाहिना हाथ वीर होलकर और वीर सेंधिया हमारे निकट ही उपस्थित रहेंगे।

ज्योंही वीर बाजीराव के मुख से अन्तिम वाक्य निकले त्योंही भृत्य वेषधारी मल्हारराव होलकर और वीरवर राणोजी सेंधिया अपने मुख पर से नकली दाढ़ी मूँछ हटाकर तुरन्त म्यान से तलवार निकाल निज़ामुल्मुल्क के सम्मुख जा उपस्थित हुए। उस समय उनका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था।

निज़ामुल्मुल्क वीर बाज़ीराव पेशवा का असाधारण साहस और उनके परम प्रिय सेनापति होलकर और सेंधिया का निडर भाव से अपने सम्मुख खड़ा होना अवलोकन कर पाषाणवत् होकर एक टक उन्हें देखने लगे। उनकी यह अवस्था कुछ क्षण तक वैसी ही बनी रही। इसके बाद वह सहसा चिल्ला कर बोल उठे—"सचमुच बाजीराव! आप वीर पुरुष हैं। मैंने आज तक आपके सदृश असाधारण वीर योद्धा नहीं देखा था। वीर होलकर और सेंधिया ऐसे निडर योद्धा आप जैसे भाग्यशालीको ही प्राप्त हो सकते हैं। मैंने केवल आपके साहस की परीक्षा करने के लिये इतना व्यूह रचा था।

निजाम बहादुर ने उस समय तो पेशवा की प्रशंसा करते हुए आदर सत्कार किया। परन्तु उसी समय से बाजीराव के प्रति उनके हृदय में विद्वेष और भी पूरी मजबूती से जम गया और वह प्रतिशोध के लिये गुप्त रूप से किसी नवीन उपाय का अनुसन्धान करने लगे जो क्रमशः पाठकों को आगे अवगत हो ही जायगा।

इस प्रकार अपने अमोघ विक्रम द्वारा कट्टर शत्रु निजामुल्मुल्क को परास्त कर और पाल पोखड़ का युद्ध समाप्त कर वीर पेशवा सन् १७२८ ई० के जुलाई मास में सितारा लौट आये और चार मास (वर्षा काल) तक स्वस्थ चित्त होकर चुपचाप बैठे रहे। इसके उपरान्त उत्तर भारत को आधीन करने के लिये उन्होंने पुनः नवीन उत्साह के साथ विजयादशमी के दिन अपने दल-बल सहित प्रयाण किया।

इसी समय ❀ बुन्देलखण्ड केशरी राजा छत्रसाल ने यवन शत्रुओं के घोर आक्रमण से पीड़ित होकर अपनी सहायता के लिये वीर पेशवा को निमन्त्रित किया था।

वीर बाजीराव पेशवा तो प्रथम से ही भारत को यवन जाति के पाश से मुक्त करना चाहते थे। दूसरे की वस्तु

❀ बुन्देलखण्ड केशरी वीर छत्रसाल का वृहद् जीवन चरित्र छप कर तैय्यार है। मू० १) रु०

पर छल कपट द्वारा अधिकार जमाने वाले इन पापियों के हाथ से भारत भूमि का उद्धार करना ही उनके जीवन का प्रधान कार्य था। फिर जब उनका निकटवर्तीय मित्र दुष्ट यवनों द्वारा पीड़ित होकर करुण स्वर में पुकार रहा था तब भला वे उसका करुणाजनक आर्तनाद न सुनते यह असम्भव था। अतः उन्होंने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक वीर छत्रसाल का निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

११

वीर छत्रसाल का महम्मद खां वंगष से युद्ध, बाजीराव को छत्रसाल का निमन्त्रण, बाजीराव का पराक्रम, मस्तानी, तथा राज्य लाभ।

मध्य प्रदेश के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड प्रदेश महाराज शिवाजी के काल से ही मुगलों के आधीन था। इस प्रदेश के राजा छत्रसाल शिवाजी के आदेशानुसार बुन्देलखण्ड से मुगल साम्राज्य को उच्छिन्न करने का यत्न कर रहे थे। वीर केशरी शिवाजी के युक्ति युक्त उपदेश द्वारा और अपने पराक्रम से वीर छत्रसाल बुन्देलखण्ड में मुगल साम्राज्य नष्ट कर हिन्दू राज्य प्रतिष्ठित करने में सफल भी हुए थे। परन्तु इतने दिन तक बुन्देलखण्ड की शासन डोर अपने हाथ में रखकर बुन्देली प्रजा को चक्की में पीसते हुए सर्व प्रकार से सुख भोग करने वाले मुगलों ने अपना अधिकार

छिन जाने पर भी बुन्देलखण्ड राज्य की आशा सहज ही में नहीं त्यागी थी। अवसर पाते ही मुसलमान, राजा छत्र-साल की सेनापर आक्रमण एवम् लूट मार करते हुए बुन्देल खण्ड राज्यको हस्तगत करने का प्रयत्न करते थे।

इसप्रकार बुन्देलखण्ड पर यवनों द्वारा आक्रमण हो ही रहा था कि, इतने में सन् १७२८ ई० में महम्मद खां बंगष नामक बीर सर्दार ने इस हिन्दू राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये विशाल सेना लेकर आक्रमण किया। महम्मद खां प्रथम मुग़ल बादशाह द्वारा प्रयाग का सूबेदार नियुक्त किया गया था। इन्हीं खां साहिब ने फ़र्रुख़ाबाद नगर स्थापित किया था। अस्तु ! खां साहेब का सामना करने के लिये बीर राजा छत्रसाल बीस हजार सेना लेकर इसके पूर्व भी खां साहेब के साथ युद्ध करने के लिये दौड़ गये थे, किन्तु सफल न हो सके। इस बार वृद्ध राजा छत्रसाल, कट्टर शत्रु महम्मद खां का आक्रमण रोकने में कृत कार्य न हो सके। महम्मदी सेना छत्रसाल का व्यूह तोड़कर नगर में घुस गई और मन माना लूट मार मचाने लगी।

वृद्ध वीर राजा छत्रसाल को जितना बुन्देल खण्ड नाश होने का दुःख नहीं हुआ उससे कहीं अधिक महम्मद खां की सहायता कर लूट-पाट में भाग लेने वाले आस पास के छोटे मोटे राजाओं से हुआ। फिर भी वृद्ध राजा छत्रसाल ने धैर्य नहीं छोड़ा और महम्मदी सेना से मोर्चा लिया।

किन्तु प्रचण्ड सागर के सदृश महम्मदी सेना के सामने क्षुद्र नदी तुल्य छत्रसाल की सेना कितने समय तक टिक सकती थी। यवनों की ही विजय हुई। अन्त में उन्होंने यवनों के हाथ से बुन्देलखण्ड राज्य की रक्षा का कोई भी उपाय न देख कर निरुपाय हो वीर पेशवा को हिन्दुओं का एक मात्र उद्धारक मित्र समझ कर निमन्त्रित किया। उन्होंने बाजीराव पेशवा के सन्निकट एक करुणा जनक पत्र लिखा था। हम अपने पाठकों के विनोदार्थ उसका आशय नीचे उद्धृत कर देते हैं—

"महम्मद खाँ सम्पूर्ण रूप से बुन्देलखण्ड राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर रहा है। बुन्देलखण्ड के असंख्य वीर समर में हताहत हो चुके हैं। किसी भी भाँति हिन्दुओंकी लाज बचाना हमारा आप का कर्त्तव्य है। अतः अब आपही हिन्दुओं के एकमात्र बन्धु हैं। आपके अतिरिक्त पृथिवी पर दूसरा वीर दृष्टिगोचर नहीं होता। कृपा कर मेरा उद्धार कीजिये। भारत भूमि को दुष्ट यवनों के हाथ से बचाइये। यदि आप ऐसे वीर पुरुष विपत्तिग्रस्त मनुष्य की सहायता कर उद्धार न करेंगे तो निश्चय ही बुन्देलखण्ड राज्य यवनों के अधिकार में चला जायगा। आप से कर बद्ध प्रार्थना है, कि एक हिन्दू की, नहीं-नहीं, वृद्ध राजा की लाज, बचाकर उपकार के भागी बनें।"

इस प्रकार का करुणा जनक पत्र पढ़कर वीर पेशवा का

हृदय दयार्द्र हो उठा और क्रूर मुसलमानों के हाथ से बुन्देल-खण्ड का उद्धार कराने के लिये महाराष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त कर सेनापति और सर्दारों सहित बीस हज़ार महाराष्ट्रीय सेना लेकर महम्मद खां का मान मर्दन करने के लिये वह चल पड़े।

वीर छत्रसाल ने अपनी शक्तिभर महम्मद खां से युद्ध किया। परन्तु अन्त में निरुपाय होकर पुत्र तथा आत्मीय बन्धु बान्धवों सहित 'तेजपुर' दुर्ग के निकट खां की सेना द्वारा अवरुद्ध हो जाने के कारण उन्होंने उपरोक्त पत्र बाजीराव के सन्निकट भेजा था। बुन्देल खण्ड में प्रवेश करते ही बाजीराव इसी 'तेजपुर' दुर्ग के समीप जा उपस्थित हुए और अपनी समग्र सेना को कई भागों में विभक्त कर उनमें से एक दल के सेनापति को महम्मद खां पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। महम्मद खां इस पेशवा दल को युद्ध में परास्त कर एक बारगी पेशवा की ओर अग्रसर हुआ। चतुर चक्र-चूड़ामणि बाजीराव पेशवा यही तो चाहते थे। उपर्युक्त अवसर अवलोकन कर उन्होंने समग्र महाराष्ट्रीय सेना को एक साथही आक्रमण करने की आज्ञा दी। फिर क्या पूछना था, महाराष्ट्र वीर बाज की भांति शत्रुदल पर टूट पड़े और अपने भयंकर तलवारों तथा भालों द्वारा यवनों को सीधे यमपुर पहुंचाने लगे। यह युद्ध सन् १७२६ ई० के १२ मार्च को हुआ था।

इस प्रकार कई सहस्र वीरों की बलि चढ़कर महम्मद खां ने सायंकाल को विश्राम ग्रहण किया। तीन दिन तक अपने सर्दारों के साथ युद्धादि विषय का विचार करता रहा। अन्त में १५ मार्च को उसने पुनः महाराष्ट्रीय सेना पर बड़े जोर-शोर के साथ आक्रमण किया। इस युद्ध में बाजीराव ने एक नवीन युक्ति से शत्रु पक्षको ध्वंस करने का विचार किया। महम्मदी सेना का आक्रमण होने पर वीर पेशवा ने शत्रु का संहार करते हुए क्रमशः पीछे हट कर ससैन्य एक पार्वतीय स्थान में पूरा दिन व्यतीत किया और सन्ध्या के समय अन्धकार में ससैन्य विद्युत वेग से महम्मदी सेना पर आक्रमण कर दिया। इधर खां साहब की सेना भी युद्ध करने को तैयार ही थी। ज्योंही महाराष्ट्र वीर पार्वतीय स्थान से आगे बढ़े त्योंही शत्रु पक्षकी तोपों से प्रचण्ड अग्नि के गोले बरसने लगे। अपनी अधिक सेना नष्ट न होने पावे इस लिये वीर पेशवा ने थोड़ी सेना लेकर शत्रु पक्षके अग्नि गोलों का सामना किया और अपने बुद्धि चातुर्य द्वारा शत्रु को भ्रम में डाल कर खूबही छकाया *।

इस युद्ध में महम्मद खां बंगष की विशेष हानि हुई थी। चतुर बाजीराव ने दस दस पन्द्रह पन्द्रह महाराष्ट्र वीरों की एक एक टोली बनाकर उन्हें चारों तरफ घूम २ कर मशाल जलाने की आज्ञा दी थी। चतुर महाराष्ट्र एक स्थान पर कुछ देर प्रकाश कर मशाला बुझा देते थे।

निशाकी भंयकर अन्धियारी होने पर भी वीर पेशवा की असाधारण निपुणता के कारण उस युद्ध में चार से अधिक महाराष्ट्र वीर नहीं मरने पाये। अलबत्ता महम्मद खां ने आशातीत चेष्टा कर अपने कई रण कुशल वीरों का अन्त कराने के पश्चात् पेशवा के कई एक घोड़े खच्चड़ प्राप्त किये थे।

दूसरे दिन पुनः दोनों दल में घोर युद्ध होने लगा। बाजीराव ने शत्रुका विध्वंस करने के लिये आज एक अन्य ही उपाय का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने गुप्त रूप से एक सेनापति को, जहां से मुगलों की सेना के लिये रसद पानी, गोला–अस्त्र–शस्त्र आदि जितनी भी युद्धोपयोगी सामग्रियां आती थीं उस मार्ग को अपने आधीन कर लेने की कठिन आज्ञा दी और स्वयम् शत्रु के सम्मुख डँटे रहे।

धीरे-धीरे भगवान अंशुमाली ने भी अपना रथ अस्ताचल की ओर बढ़ाया। थोड़ी देर में घोर अन्धकार हो गया। अतः इस उपयुक्त अवसर पर वीर पेशवा ने महाराष्ट्रीय दल को तीन भागों में विभक्त कर तीन तरफ से ससैन्य खां साहेब को घेर लेने के लिये भेजा। महाराष्ट्रों ने बड़ी बीरता तथा सतर्कता के साथ महम्मद खां को सेना सहित अवरुद्ध कर लिया। इसके पूर्नही बाजीराव की विलक्षण बुद्धि द्वारा बेचारे खां बहादुर को अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य द्रव्य मिलना

और झट् पट दूसर स्थान पर चले जाते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण रात्रि भर कार्य क्रम चालू रहा। और उन्हें खूब परीशान किया।

कठिन हो गया। अव-शिष्ट अन्न तथा गन्दे नालों के जल से खां साहेब ने कई दिन व्यतीत किये। परन्तु अवशिष्ट वस्तुएं कितने दिन तक स्थिर रह सकती हैं ? धीरे-धीरे उनकी सेना में घोर दुर्भिक्ष और हा हाःकार मच गया तथा उन्होंने अपना स्वरूप दिखाना आरम्भ किया। बड़ी कठिनता से १५) रु० सेर अन्न मिले। परन्तु महम्मद खां को धन की क्या कमी थी। बुन्देलखण्डके राजा का लूटा हुआ धन तो उनके खजाने में भरा था। अतः मदमत्त खां बहादुर ने पराजय स्वीकार न कर इसी दशा में दो मास व्यतीत कर दिये। परन्तु इन दो महीनों में महम्मद खां को अपने अनर्थक अहंकार का बड़ा दारुण कष्ट भोगना पड़ा। क्योंकि प्रति दिन उनके क्षुधा पीड़ित सर्दार और सैनिक गण महाराष्ट्रों के चमचमाते हुए भालों द्वारा बिहिश्तमें पहुँचाये जाते थे। फिर भी महम्मद खां समर भूमि से न भागा। और यदि भाग भी जाता तो किधर ? बेचारा चारो तरफ से शत्रु सेना द्वारा अवरुद्ध था। अस्तु। जिस प्रकार शिकारी के जाल में फंसा हुआ शिकार नाना उपायों द्वारा अपने मुक्त होने का प्रयत्न करता है उसी तरह महम्मद खां ने भी मुक्त होने के लिये कोई कसर नहीं उठा रखी थी। परन्तु चतुर पेशवा के अपूर्व्व नीति जाल से लाखों उपाय करने पर भी वह मुक्त न हो सका। इसी बीच उसका पुत्र 'कायम खां' तीस हजार सेना लेकर पिता को मुक्त करने के लिये तेजपुर दुर्ग के निकट आ उपस्थित हुआ।

वीर पेशवा ने कायम खां का आगमन श्रवण कर तुरन्त उसपर आक्रमण करने की आज्ञा दी। और सन् १७२६ ई० की २६ अप्रैल को तेजपुर दुर्ग से बारह मील की दूरी पर दोनों पक्षों का विकट युद्ध हुआ था। भूखे सिंह की भांति एक बारगी महाराष्ट्र वीरों ने टूट कर अपनी तीक्ष्ण तलवारों द्वारा शत्रु पक्षको धराशायी करना आरम्भ कर दिया। महाराष्ट्रों के 'हर हर महादेव' का गगन भेदी नाद एवम् प्रचण्ड भालों की मार ने शत्रु को तहस-नहस कर डाला। पेशवा की भवानी तलवार के सम्मुख कायम खां के वीर सर्दार सेनापतिगण समर भूमि में टिक न सके।

इसप्रकार दक्षिणी वीरों द्वारा पराजित कायम खां अपना प्राण बचाकर समर भूमि से भाग खड़ा हुआ। उसके भागते ही सैनिकगण भी रण भूमि से मुख मोड़ने लगे और तेजीके साथ जिसे जो मार्ग दिखलायी पड़ा वह उधर ही भागने लगा। शत्रु को भागते देख महाराष्ट्र वीरों ने उनका पीछा किया। शत्रुओं का कुछ दूर तक पीछा कर महाराष्ट्रीयवीर समर भूमि में लौट आये। परन्तु वहां पर शत्रुपक्ष का एक भी सैनिक दृष्टि गोचर नहीं होता था। हां,मृतकों और घायलों से रण भूमि 'खचाखच' भरी थी। इस युद्ध में वीर पेशवा के हाथ शत्रुपक्ष के तेरह रण दिग्गज सांड़, ऊँट, तीन हजार घोड़े और कई सौ बन्दुकें लगीं थी। अस्त्र शस्त्र का तो ठिकाना

नहीं कि कितने मिले। महम्मद खां और उनके पुत्र पराजित हुए। बाजीराव ने उपरोक्त वस्तुओं का लाभ किया।

वृद्ध राजा छत्रसाल वीर पेशवा के पराक्रम द्वारा शत्रु के दम टूटते ही अपने बुन्देले वीरों को साथ लेकर क्षुधित केशरी की भांति महम्मद खां के ऊपर टूट पड़े। अपमानित और पराजित महम्मद खां तथा उसके वीर सैनिक गण उस भयङ्कर आक्रमण को वर्दाश्त न कर सके। थोड़े समय में ही समर भूमि यवनों की लाश से परिपूर्ण हो गई। अब महम्मद खां बचे हुए सैनिकों को लेकर भागने ही वाला था कि उसी समय वृद्ध राजा छत्रसाल ने उन्हें युद्ध के लिये ललकारा। परन्तु खां बहादुर ने अपने सैनिकों के साथ रणभूमि से भाग कर तेजपुर दुर्ग में आश्रय लिया।

महम्मद खाँ के अपने दल-बल सहित तेजपुर दुर्गमें प्रवेश करते ही महाराष्ट्रीय सेना ने तेजपुर दुर्गको भी चारो ओरसे घेर लिया। महम्मदी सेना अन्न जल के लिये तड़फने लगी। अस्तु! मांसाहारी यवन खाद्य पदार्थ न मिलने पर क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित होकर ऊंट, घोड़ा आदि मार २ कर अपने उदर का पोषण करने लगे।

महम्मद खां के अनेक वीर सेनापति उपरोक्त युद्ध में ही समाप्त हो चुके थे। अब बचे खुचे सेनापति तथा सैनिक गणोंने अन्न प्राप्त न होने के कारण यमराज की नगरी का टिकट कटाना आरम्भ कर दिया। इस दुखदायी घटना के

घटित होने से महम्मद खां को विशेष दुःख हुआ। परन्तु खां बहादुर ने पराजय स्वीकार नहीं किया। जब पेशवा ने इस संवाद को सुना तो उन्होंने यह मुनादी करवा दी कि "जो अस्त्र-शस्त्र परित्याग कर पेशवा के आश्रय की प्रार्थना करेगा वह मुक्त कर दिया जावेगा।"

वीर पेशवा की इस घोषणा ने महम्मदी सेना में खल-बली मचा दी। महम्मद खां के आज्ञा न देने पर भी दल के दल यवन सैनिक महाराष्ट्रों के सम्मुख उपस्थित हो आत्म समर्पण करने लगे। वीर पेशवा ने उनके साथ सद् व्यवहार करते हुए उन्हें मुक्त कर दिया।

महाराष्ट्रीय सेना द्वारा अवरुद्ध हो, अन्न जल के लिये अत्यन्त दुःख भोगते हुए भी तथा बन्धु-बान्धव सुहृद आत्मीय तथा सैनिकों के छोड़ देने पर भी अहंकारी खां बहादुर ने पेशवा के शरणागत होना स्वीकार नहीं किया और अपनी मुक्ति के लिये पुनः अपने पुत्र को एक बार सेना लेकर आक्रमण करनेके लिये एक पत्र लिखा। परन्तु उस पत्र का लिखना व्यर्थ हुआ। क्योंकि महाराष्ट्रों का प्रचण्ड प्रहार उसे अभी भूला न था। अतः उसने माता के अनुरोध से कुछ पठानों के अधिनायकत्व में एक छोटी सी सेना भेज दी। जिसके द्वारा वह किले से भाग निकलने में समर्थ हुआ—

वीर पेशवा ने सम्पूर्ण रूप से महम्मद खां बंग" को

परास्त कर बुन्देलखण्ड राज्य को यवनों के शासन से बचाया। इस युद्ध में उनको अनेक समर यातनायें भी भोगनी पड़ी थीं। परन्तु वीर वाजीराव ने उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। उनका एकमात्र ध्येय यही था कि मुगलों को अपने राज्य से ही नहीं, वरन् समस्त भारत वर्ष से निकाल दें। अस्तु ! सम्पूर्णतः युद्ध समाप्त हो जाने पर पेशवा ने राजा छत्रसाल से भेंट की। वृद्ध वीर राजा छत्रसाल ने पेशवा को आलिंगन किया। उस समय उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे। उन्हों ने गद्-गद् होकर राजदर्बार में घोषणा की कि वीर वाजीराव पेशवा ने बुन्देलखण्ड राज्य को दुष्ट यवनों के करतलगत से बचाकर मेरा उद्धार किया है। अतः मैं अपने दोनों पुत्रों से भी बढ़ कर इन्हें अपना तृतीय पुत्र समझता हूं और उपहार स्वरूप यमुना-तटवर्ती 'झांसी' नामक दुर्ग और उसके आसपास की प्रायः सवा दो लाख रुपये वार्षिक आय की पृथ्वी प्रदान करता हूं।

इस प्रकार वीर पेशवा कई दिन तक राजा छत्रसाल के अतिथि बने रहे। वृद्ध नरपति ने वीर पेशवाको मणि मुक्तादि के अतिरिक्त मस्तानी नाम की एक नवयौवना 'चन्द्रवदनी' तरुण रमणी रत्न को समर्पण किया था। यह तरुण बाला अत्यन्त सुन्दरी थी और छत्रसाल की उपपत्नी की गर्भ-

जात कन्या थी। ※ चाहे तरुण पेशवा के रूप गुण पर तरुणी के आसक्त हो जाने से अथवा उचित पात्र समझ कर छत्र-साल ने मोहनी कन्या पेशवा को समर्पण किया, यह ठीक २ पता नहीं चलता।

※ 'राजा छत्रसाल की कोई यवन जातीय संभ्रान्त उप पत्नी के गर्भ से 'मस्तानी' का जन्म हुआ था। तवारीख " बुन्देलखण्ड " नामक उर्दू इतिहास में यह लिखा है कि, वीर पेशवा को अनिच्छा होने पर भी वह वृद्ध राजा छत्रसाल का अनुरोध टाल न सके और मस्तानी का पाणिग्रहण किया था। परन्तु कुछ काल के उपरान्त वही पेशवा नृत्य, गान और वाद्य प्रवीण विदुषी मस्तानी के नेत्र कटाक्ष से ऐसे मुग्ध हो गये थे कि एक पल के लिये भी उसे आँखों की ओट नहीं होने देते थे। इसके कारण राजकीय कार्य में भी बाधा उपस्थित होने लगी। परन्तु उस समय पेशवा को इसका तनिक भी ख्याल न था। वह हर एक जगह मस्तानी को साथ लिये रहते थे, इतना ही नहीं वरन प्रत्येक युद्ध यात्रा भी मद मत्त मस्तानी के साथ रहे विना सम्पूर्ण नहीं होती थी। उस रमणी में नृत्य गान-विद्या आदि गुणों के साथ साहित्य राजनीति, युद्ध कौशल आदि भी गुण विद्यमान थे। तभी वीर पेशवा वीराङ्गणा मद मस्त मस्तानी को युद्ध क्षेत्र में भी सदा अपने निकट रखते थे। और तरुण मस्तानी भी उनकी आज्ञा का सदा सर्वदा पालन करती थी। परन्तु पेशवा का ऐसा व्वहार लक्षित कर महाराज शाहू उनसे अप्रसन्न हो उठे। सर्व प्रथम उन्होंने अनेक बार बाजीराव को समझाया परन्तु उसका कुछ फल न देखकर

बाजीराव पेशवा ने अपने प्रिय मदमस्त मस्तीनी के निवास के लिये पूना नगर के "शनिवार वाडा" में एक स्वतन्त्र और अत्यन्त मनोहर महल बनवा दिया था। जो कि चतुर्दिग से रमणी प्रधान से अवरुद्ध था। महल राजकीय ठाट बाट से परिपूर्ण था। पेशवा ने उस महल के प्रवल द्वार का नाम 'मस्तानी दर्वाज़ा' और महल का नाम 'मस्तानी महल' रखा था। इस प्रकार सतर्कता पूर्वक राजकीय कार्य करते हुए वह आन्नन्द पूर्वक जीवन व्यतीय करने लगे। सन् १७३४ ई० में

अन्त में उन्हे पदच्युत करने का भय दिखाया। प्रेमिका के प्रगाढ़ प्रेमपाश में फंसा हुआ प्रेमी किसी प्रकार के कष्ट से भयभीत नहीं होता, उस समय वह यही क्या, त्रैलोक्य के राज्य सुख को लात मारने के लिये प्रस्तुत रहता है। ठीक, यही दशा बाजीराव की थी। वह प्रधान पद को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। अन्त में जब उनके कनिष्ट भ्राता चिमणाजी देखा कि किसी भी भांति बाजीराव का मन विचलित नहीं होवा तो उन्होंने एक नवीन युक्ति का आश्रय ग्रहण किया। उन्होंने पेशवा के इस कार्य से अत्यन्न विरक्त होकर शीघ्र ही सँन्यास ग्रहण कर संसार को भी त्याग करने का दृढ़ सँकल्प प्रकट किया। तब पेशवा की निद्रा भंग हुई। वह तरुण रमणी के प्रेम को न्यून कर अपने इस अधम कार्य पर पश्चात्ताप करते हुए राजकीय कार्य क्रम में लग गये। बाजीराव के इस कार्य से महाराज शाहू अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके प्रिय भ्राता चिमणाजी आप्पा ने सँन्यास लेने का संकल्प परित्याग किया।

रमणी रत्न मस्तानी के गर्भ से एक पुत्र रत्न पैदा हुआ। जिसका नाम शमशेर बहादूर रखा गया था। शमशेर बहादूर पेशवा के समय में महाराष्ट्र मण्डल के सर्दार पद पर प्रतिष्ठित किये गये थे। स्वकीय पिता बाजीराव के समान ही उनमें धैर्य, वीर्य, राजनीति आदि गुण विद्यमान थे। शमशेर बहदुर के पुत्र 'अली बहादूर ने पेशवा माधव राव नारायण के समय में चालीस हज़ार सैन्य लेकर बुन्देल खण्ड में परस्पर विवादी राजाओं को परास्त कर लग भग ७५ लाख रुपया वार्षिक आय का देश अपने आधीन किया था। इन्हीं अली बहादूर ने पेशवाओं की आज्ञानुसार मध्य भारत में अपनी राजधानी निश्चित की थी।

प्रसिद्ध पानीपत के महाभंयकर युद्ध में जब कि महाराष्ट्रीय शक्ति का ह्रास होने लगा था उस समय वीर शमशेर बहादुर ने अपने प्रचण्ड पराक्रम से शत्रु पक्षके बड़े योद्धाओं का मस्तक काट कर समरभूमि को केवल मुण्डों से ढांप दिया था। उस महा कराल युद्ध में शमशेर बहादुर के शरीर में इतने घाव लगे थे कि तिल रखने की भी जगह न थी। अन्त में शमशेर बहादूर ने उन अगणित घावों से पीड़ित होकर समर भूमि में अपना प्राण विसर्जन कर दिया। वीर शमशेर बहादुर की मृत्यु सन् १७६१ ई० में हुई थी। शमशेर बहादुर की मृत्यु के पश्चात् उनके सुयोग्य पुत्र अली बहादुर ने पिता का पद ग्रहण किया। अली बहादूर ने भी

अपने जीवन में अनेकों युद्ध किये और अपनी गद्दी मध्य भारत में बांदा नगर में स्थापित की थी। जिसे पाठक गण पढ़ चुके हैं। अस्तु ! अली बहादुर ने पेशवाओं के काल में 'नवाब' की पदवी प्राप्त की थी और आज तक उनके 'बंश 'बांदा के नवाब' के नाम से प्रख्यात हैं।
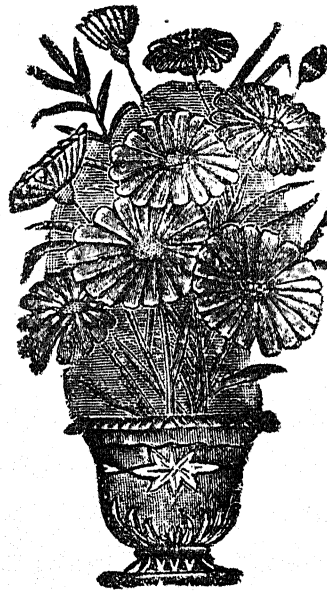
१२
गुजरात प्रदेश में चौथ विस्तार, सेनापति का विद्वेष, निज़ामुल्मुल्क की कूटनीति।

—•:❀✻❀:•—

हाराज शाहूकी यह उत्कट इच्छा थी कि गुजरात प्रदेश महाराष्ट्रीय साम्राज्य में सम्मिलित हो जाय। उन्होंने अपने इस विचार को पेशवा के सम्मुख प्रकट भी कर दिया था। जिस समय वीर बाजीराव और निज़ाम बहादुर का प्रथम युद्ध हुआ था, उस समय बाजीराव ने गुजरात पर भी आक्रमण किया था। परन्तु पूर्णतया सफल नहीं हो सके थे। अतः १७२६ ई० में उन्होंने अपने बन्धु चिमणाजी अप्पा को गुजरात की ओर भेज कर आप स्वयम् विशाल सेना के साथ वहां उपस्थित हुए। पहले उन्होंने गुजरात के सूबेदार सर बुलन्द खां को यह सूचित किया कि, यदि वह गुजरात के समस्त सर्दारों सहित महाराष्ट्र पति की आधीनता स्वीकार करते हुए समस्त प्रदेश का चौथ और सरदेश मुखी का

स्वतन्त्र महाराष्ट्रों को प्रदान कर प्रमाण पत्र लिख देंगे तो महाराष्ट्र पति गुजरात प्रदेश की शान्ति रक्षा का भार उठाने के लिये तैयार हैं।"

इस प्रकार सर बुलन्द खां के सन्निकट उपरोक्त पत्र प्रेषित करने के पूर्व ही वीर बाजी राव ने त्र्यम्बकराव दावाड़े, पीलाजी गायकवाड़ और कण्ठाजी कदम आदि प्रचण्ड सेनानिओं को गुजरात विजय करने की आज्ञा दे दी थी। पहले तो सर बुलन्द खां ने इन सेनापतियों के आक्रमण से बचने का आशातीत उद्योग किया। परन्तु सब प्रयत्न निष्फल होने पर उन्होंने दिल्ली के बादशाह से सेना दल भेजने की प्रार्थना की।

उस समय दिल्लीश्वर युद्धादि झगड़ों से दूर रह कर अपने शाही महलों में सुन्दर २ कामिनियों के साथ मदिरा रूपी अमृत का रसास्वाद करते हुए विलासिता के शिकार बन रहे थे। गुजरात पर महाराष्ट्रीय सेनाका प्रचण्ड आक्रमण होने पर भी उन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। सुख सौन्दर्य का परित्याग कर, कठिन राजकीय युद्धादि का प्रबन्ध करना दिल्लीश्वर के लिये असम्भव था। अतः उनसे से सर बुलन्द खां को सेना की सहायता नहीं मिली। अन्त में खां बहादुर को विवश होकर महाराष्ट्रों से सन्धि करने और महाराज शाहू को चौथ प्रदान करने के लिये प्रस्तुत होना पड़ा था। जिस समय सर बुलन्द

खां महाराष्ट्र पति को चौथ आदि कर देने को तैयार थे उस समय महाराष्ट्रीय सेना के सेनापति कण्ठाजी कदम और पीलाजी गायकवाड़ आदि महाराष्ट्र वीर खां बहादुर की सन्धि का कुछ विचार न कर समग्र गुजरात देश को लूट-पाट कर नष्ट भ्रष्ट करने लगे। उनके लूटपाट के कारण समस्त प्रदेश में हाहाकार मच गया। अपने ही मनुष्यों द्वारा बेचारे गुजरात निवासियों की दुर्दशा देखकर वीर पेशवा अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने सर बुलन्द खां के निकट सन्धि पत्र उपस्थित किया। खां बहादुर उस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने को सहमत होगये। उस सन्धि पत्र में नीचे लिखी शर्तें थीं:—

१—समस्त गुजरात का चौथ और सरदेश मुखी का स्वत्व महाराष्ट्र पति को अर्पण करना होगा। इसमें कभी भी सूबेदार सर बुलन्द खां हस्तक्षेप नहीं करेगें।

२—इसके पुरष्कार स्वरुप गुजरात निवासियों को चोर ठग आदि उपद्रवियों से रक्षा करने के लिये महाराज शाहू २५ सौ सैना उक्त प्रदेश में रखेगें जो समय पर सूबेदार साहब की भी सहायता करेगी।

३—गुजरात के विद्रोही जागीरदारों की कोई भी महाराष्ट्र वीर, किसी भी प्रकार की, सहायता नहीं करेगा और उक्त प्रदेश के ज़मीनदार किसी भी प्रकार की बग़ावत (उपद्रव) करेगें तो इसके उत्तर दायी सूबेदार साहब समझे जायंगे।

इस प्रकार उपरोक्त सन्धि पत्र पर सूबेदार साहब ने सहर्ष हस्ताक्षर कर दिये। इसके पश्चात् वीर पेशवा ने सैन्य दल के प्रधान सेनानी त्र्यम्बक राव दावाड़े को 'मोकासा' और सरदेश मुखी के स्वत्व का कुछ अंश प्रदान किया। परन्तु सेनापति त्र्यम्बक राव दावाड़े और उनके मित्र कण्ठाजी कदम और अन्य सहकारी लोग इतनी थोड़ी रकम से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने विशेष धन प्राप्त करने के लिये गुजरात के धनिकों को लूटना आरम्भ कर दिया। फिर क्या था, देखा देखी और लोगों ने भी लूट का मार्ग अवलम्बन कर लिया।

पेशवा की असाधारण बुद्धि तथा विशेष मान सम्मान अवलोकन कर उपरोक्त सेनापतिगण उनसे जलने लगे थे और उनके विशेष जलने का कारण यह भी था कि पेशवा ने उन लोगों की अनुमति इस सन्धि व्यापार में नहीं ली थी। अतः सेनापति और उनके सहकारी लोग अपना विशेष अपमान समझ कर बिद्रोही बन बैठे।

निज़ामुलमुल्क इसके पहले कई बार वीर पेशवा द्वारा युद्ध में हार कर सन्धि बन्धन में बंध चुके थे। परन्तु उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ था। वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये सुअवसर का अनुसन्धान कर रहे थे। खां बहादुर ने प्रकटरूप में तो सन्धि बन्धन में अवरुद्ध रह कर बाजीराव का पक्ष अवलम्बन किया था। परन्तु छिपे

छिपे वह पेशवा के प्रतिद्वन्दीगणों की सहायता करना चाहते थे। अतः जिस समय सेनापति और सरदारों के असन्तोष होने का संवाद उन्होंने सुना उस समय उपर्युक्त अवसर को भला वह कब हाथ से जाने देते ? उन्होंने पेशवा के प्रतिद्वन्दी त्र्यम्बक राव दावाड़े को अपनी ओर मिलाकर धन द्रव्य, अस्त्र शस्त्र तथा सैन्य बल द्वारा हर प्रकार से सहायता करने का वचन दिया। फिर क्या था, 'दावाड़े' महाशय एक सम्पन्न व्यक्ति को अपना पृष्ठ पोषक देख फूल कर कुप्पा हो गये और पेशवा बाजी राव से घोर संग्राम करने के हेतु रण क्षेत्र में सामना करने के लिये तैयार होगये।

इस प्रकार निजाम ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति की सहायता प्राप्त कर सेनापति त्र्यम्बकराव दावाड़े ३५ हजार सेना लेकर गुजरात से वीर पेशवा को मार भगाने के लिये पूना नगर की ओर चल पड़े। प्रयाग के पूर्व ही उन्होंने यह समाचार प्रकाशित करा दिया कि—"बाजीराव महाराज शाहू से विशेष मान सम्मान प्राप्त कर भयकारी हो गये हैं। वह अपने वीर्य शौर्य द्वारा महाराष्ट्र पति की राज सत्ता नष्ट कर स्वयम् राजसिंहासन हस्तगत करना चाहते हैं। इस समय समस्त राजकीय कागज पत्र तथा सैन्य बल पेशवा के हाथ में रहने के कारण सहज ही में वह राज्य सिंहासन प्राप्त कर सकेगें और सिंहासना

रूढ़ होने पर फिर उन्हें किसी भी भांति हटाना असम्भव है। अतः महाराज शाहू को महाराष्ट्रपति कायम रखने और बाजीराव का अंहकार चूर्ण करने के लिये, त्र्यम्बकराव दावाड़े उनसे युद्ध करेंगे। बाजीराव के इस कार्य से अत्यन्त दुःखित होकर कई एक महाराष्ट्र सेनापति सरदार त्र्यम्बकराव दावाड़े की सहायता करने को प्रस्तुत हुए हैं। अतः समस्त महाराष्ट्र राज्य के हितैषियों से यह प्रार्थना है कि इस पुण्य कार्य में उनकी सहायता कर महाराष्ट्रपति की राजसत्ता नष्ट न होने दें।"

इस प्रकार त्र्यम्बकराव की उपरोक्त घोषणा चारो ओर फैल जाने पर जो लोग चिरकाल से वीर पेशवा के आश्रित तथा अनुयायी थे, उन लोगों में से भी कितनों ने ही बाजीराव का उपकार भूल कर उनका सर्वनाश करने के लिये सेनापति त्र्यम्बक राव का पक्ष ग्रहण कर लिया।

सेनापति त्र्यम्बकराव का प्रकाशित हुआ विश्वास घातक समाचार जब वीर पेशवा को कर्णगोचर हुआ तो वह तनिक भी विलम्बित नहीं हुए। वरन वीर की भांति त्र्यम्बकराव के इस भीषण गृह विवाद के फैलाने के हेतु यथोचित दण्ड देने के लिये सेना समूह एकत्रित करने लगे। परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि निजाम के उसकाने से यह आपस का गृह कलह उत्पन्न हुआ और त्र्यम्बक राव की सहायता के लिये स्वयम् निजामुलमुल्क सेना सहित

आ रहे हैं तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। तत्क्षण बाजीराव एकत्रित की हुई सेना को लेकर सेनापति तथा उनके सहकारियों का दमन करने के निमित्त अग्रसर हुए। मार्ग में चारो ओर उन्होंने भी जो घोषणा की थी वह इस प्रकार है:—

"सेनापति त्र्यम्बकराव का प्रकाशित किया हुआ समाचार विश्वास घातक है। निज़ामुल्मुल्क कई बार महाराष्ट्र वीरों से पराजित हो चुके हैं। अतः महाराष्ट्रीय शक्ति के सम्मुख अपनी दाल गलती न देख कर वह एक नूतन युक्ति द्वारा महाराष्ट्रीय शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट करने के विचार से त्र्यंबकराव को अपने पक्ष में मिला कर महाराष्ट्र राज्य में कलहरूपी अग्नि घर घर प्रज्वलित करना चाहते हैं। त्र्यम्बकराव ने हिन्दू होकर भी एक यवन के परामर्श से अपने जातीय भाइयों का रक्त बहाने का मार्ग अवलम्बन किया है। उनका यह निन्दनीय कार्य हिन्दू धर्म के विरुद्ध है। अतः जो लोग महाराष्ट्र साम्राज्य कायम रखना चाहते हैं, जिन्हें मातृभूमि प्यारी है, जो अपने को सच्चा महाराष्ट वीर समझते हैं, उन वीरों का कर्त्तव्य है कि राजद्रोही सेनापति त्र्यम्बकराव तथा उनके सहकारियों का गर्व खर्ब करने के लिये बिना विलम्ब किये अस्त्र शस्त्र धारण कर महाराष्टपति के सैन्य दल में सम्मिलित हों।

इस प्रकार बीर पेशवा की घोषणा सुनते ही सामान्य

नदी तुल्य महाराष्ट्रीय सेना अश्व तथा योद्धाओं से सुसज्जित हो महासागर के सदृश दृष्टि गोचर होने लगी। परन्तु यह नवीन सेना के वीर योद्धा वेतन भोगी न थे, वे निःस्वार्थभाव से मातृ भूमि की मंगल कामना से महाराष्ट्र पति का साम्राज्य कायम रखने के लिये, राज द्रोहियों का मद मर्दन करने के लिये अपने प्रिय प्राणों की ममता छोड़ कर पेशवा की रण पताका के नीचे उपस्थित हुए थे। इतना ही नहीं वरन् जिन सरदारों ने ससैन्य सेनापति त्र्यम्बकराव का पक्ष ग्रहण किया था वह स्वजातीय हित के लिये बाजी-राव के सैन्य दल में आ मिले।

सेना विभाग की शक्ति ठीक-ठीक हो जाने पर बाजीराव ने इस आकस्मिक विपद् घटना से पत्र द्वारा महाराष्ट्रपति को सूचित किया। परन्तु दुर्बल हृदय महाराज शाहू ने त्र्यम्बकराव दाबाड़े से बाजीराव का दमन करने की असमर्थता प्रकट की। पेशवा को सेनापति दाबाड़े से विरोध छोड़ कर सन्धि करने की आज्ञा दी। परन्तु बाजीराव ने उनकी आज्ञा पर ध्यान नहीं दिया। सन् १७३० ई० के सितम्बर मास में वह अपने कनिष्ठ भ्राता चिमणाजी आप्पा को अपने दल बल सहित सेनापति त्र्यम्बकराव, उनके सहायक तथा निज़ामुलमुक को परास्त करने के लिये रवाना हो गये।

चतुर राज नीतिज्ञ बाजीराव ने राज्य बल को बनाये रखने के विचार से गुजरात पहुँचने के पूर्व सेनापति

त्र्यम्बकराव के पास सन्धिका प्रस्ताव पेश किया था। उन्हें जातीय वैमनस्य से हार्दिक घृणा थी। इस लिये वह यह सन्धि करना चाहते थे। परन्तु मदोन्मत्त त्रिम्बकराव ने इसका उल्टा ही अर्थ समझा। वह पेशवा को डरा हुआ समझ कर उन पर एक बारगी आक्रमण कर बैठे। वीर पेशवा नर्मदा नदी उतरने भी न पाये थे कि उनके अग्र-गामी सरदार को पीलाजी के पुत्र दामाजी गायकवाड़ ने सहसा आक्रमण कर घायल कर दिया।

इस प्रकार विश्वास घात द्वारा त्रिम्बकराव का आक्रमण करना सुन कर बाजीराव क्षुधित केशरी की भांति क्रोधित होकर निज़ामी सैना को गुजरात प्रदेश में हराने के हेतु पूर्णरूप से तत्पर रहे।

निज़ामुल्मुल्क (नवाब हैदराबाद) कई युद्धों में वीर पेशवा द्वारा परास्त हो चुके थे। अतः उन्होंने इस अवसर पर भी बाजीराव के सम्मुख हो प्रकाश्य भाव से युद्ध कर अपनी पूर्व सन्धि को नष्ट करना नहीं चाहा। आपुस की फूट में बन्दर का अंश उन्ही को मिलेगा, इसे वह बखूबी जानते थे। इसीलिये वह बगुला भगत बन कर अवसर के ताक में बैठे रहे।

—*•❀❀❀❀—

१३

वीर बाजीराव द्वारा त्र्यम्बकराव की पराजय, त्र्यम्बकराव की मृत्यु, उनके पुत्र यशवन्तराव के साथ मित्रता, निज़ाम के साथ सन्धि ।
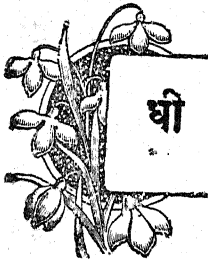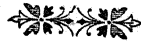
धीर वीर बाजीराव पेशवा अपनी प्रचण्ड सेना के साथ बडोदा और दभई नामक नगरी के मध्य में जा पहुँचे। उनके विरुद्ध पक्षमें सेनापति त्र्यम्बकराव, पीलाजी, दामाजी गायकवाड कण्ठाजी कदम तथा निज़ामुल्मुल्क बहादुर (नवाब हैदराबाद) अपनी २ सेना लेकर प्रस्तुत थे, किन्तु वीरवर बाजीराव उस सेना समुद्र को देख कर तनिक भी न घबड़ायें। वरन् शान्त होकर टक्कर लेने पर उतारू रहे।

सन् १७३१ ई० को उक्त स्वजातिय बन्धुओं का घोर संग्राम आरम्भ हुआ। दोनों पक्ष के तोपों की गड़गडाहट, गोलियों की सनसनाहट एवम तलवारों की झनझनाहट से

दिग् दिगन्त गूँज उठा। महाराष्ट्र सेना निस्वार्थ भाव से देश के कल्याणार्थ अपने प्राण विसर्जन करने को कटि बद्ध थी। किन्तु शत्रु पक्ष? —वह केवल स्वामी की आज्ञा से, भयभीत होकर, द्रव्य के लालच से युद्ध कर रहा था। वीर पेशवा बार-बार अपने वीरों को प्रोत्साहित कर चारो ओर घूम २ कर शत्रु दल को साफ करते जाते थे। थोड़ेही काल में उनके प्रबल प्रताप को देखकर शत्रु सैना भाग खड़ी हुई। अपने ३५ हज़ारके विशाल सेना समुद्र का कुछ भाग मृतक और कुछ भागता हुआ देख कर त्र्यम्बकराव क्रोध से बावले हो गये और एक मस्त हाथी पर चढ़कर प्रचण्ड वेग से आगे बढ़ते हुए पेशवा की सेना पर तीर की मार चलाने लगे। कहा जाता है कि त्र्यम्बक राव की बाण वृष्टि ने अधिकांश महाराष्ट्र वीरों को रण भूमि में सुला दिया था। अस्तु! हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओं को नष्ट होते देख पेशवा अत्यन्त दुःखित हुए। उन्होंने इस जातीय झगड़े को शान्त करने के उद्देश्यसे त्र्यम्बकराव के पास यह सन्देश भेजा कि— "शत्रुपक्ष अवलम्बन कर अपने स्वजातीय बन्धु बान्धव पर इस प्रकार का बल वीर्य और युद्ध कौशल दिखाना आप ऐसे विचारवान् राजनीतिज्ञ स्वजातीय बन्धु को उचित नहीं दीखता। एक हिन्दू को अपने भाई ही नहीं वरन् अपने ही कट्टर शत्रु-यवनों के पक्ष में सम्मिलित होकर हिन्दुओं पर बल दिखाना सरासर असभ्यता है। बेहतर होता, यदि आप

स्वजातीय पक्ष अवलम्बन कर शत्रुओं का मान मर्दन करते। आपको सोचना चाहिये कि आपुस की लड़ाई से तीसरे का भला होता है। अतः आपको उचित है कि युद्ध रोक दें।

बाजीराव का उक्त सन्देश निरर्थक ही साबित हुआ। त्र्यम्बकराव ने उसकी परवाह न कर अपनी सेना को पेशवा के सैन्यदल पर औरभी कठोर रुपसे आक्रमण करने को आज्ञा दी। वीरवर पेशवा भी भयङ्कर मानसिक सन्ताप के वशीभूत हो गये। उन्होंने अपनी सेना को युद्ध जारी रखने की आज्ञा देदी।

वीर बाजीराव की सेना भूखेसिंह की भांति शत्रु पक्ष पर टूट पड़ी। फिर क्या था! दोनों पक्ष का विकट युद्ध आरम्भ हो गया। उस घोर घमासान युद्ध में महाराष्ट्र वीरों को बाजीराव की (सेनापति के प्राण वरण न करने की) आज्ञा का स्मरण न रहा। अतः एक महाराष्ट्र युवा सैनिक ने जोश में आकर सेनापति त्र्यम्बकराव को अपनी बन्दुक का ऐसा निशाना बनाया कि, महा-अहंकारी विभीषण त्र्यम्बकराव मदमस्त गजराज के हौदे में अपनी मस्ती छोड़ कर जो सोये तो फिर उठे ही नहीं। सैन्य दल के जलते हुए दीपक को एका एक बुझाते देख उसकी पराजित सेना हाहाकार करती हुई इधर उधर भागने लगी। शरीर में अनेको ज़ख्म लगे हुए स्वयम पीलाजी गायकवाड़ ने भी शत्रुपक्ष से मुँह मोड़ कर एक ओर का रास्ता नापा।

इस महायुद्ध में वीर पेशवा के साथ उनके प्रिय सेनापति मल्हारराव होलकर और राणोजी सेन्धिया ने गायकवाड़ के दोनों पुत्रों के साथ-साथ असंख्य शत्रुसैन्य का संहार किया था। पीलाजी गायकवाड़ ने शत्रुपक्ष अवलम्बन कर व्यर्थ ही अपने दोनों वीर पुत्रों को विराट रूपिणी महामाया रण-चण्डी को बली दे दिया।

पराक्रमी सेन्धिया और वीर राणोजी होलकर की सहायता से वीर बाजीराव पेशवा ने मुट्ठी भर महाराष्ट्र योद्धाओं द्वारा प्रचण्ड सागरवत् शत्रु सेना को परास्त कर विजय का डंका बजाते हुए सितारा में प्रवेश किया। उनके आगमन के पूर्व ही अन्तर द्वेषी राज प्रतिनिधि श्रीपतिराय ने बाजीराव के विरुद्ध अनेक बातें महाराज शाहू के कानों में भर दी थीं। जिस समय बाजीराव शाहू महाराज के निकट पहुँचे, उस समय शाहूजी की भाव भङ्गी एवम् रुखापन देख उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। थोड़े दिनों पश्चात् जब उन्हें श्रीपतिराव का षडयंत्र ज्ञात हुआ तब उन्होंने समस्त सत्य घटना महाराज शाहू के सम्मुख वर्णन कर उनका क्रोध शान्त करने की चेष्टा की। अतः कहना व्यर्थ होगा कि अपनी ही करनी से राजप्रतिनिधि महाशय को अपना मस्तक नीचा कर लेने का यह दूसरा अवसर प्राप्त हुआ था। महाराज शाहू ने समस्त सत्य घटना सुन कर मृत सेनापति त्र्यम्बकराव के पुत्र यशवन्त-

राव के स्वर्गीय पिता (सेनापति) के पद पर प्रतिष्ठित करके पेशवा के साथ उनकी मित्रता स्थापित करा दी और भविष्य में कभी भी यशवन्तराव और पेशवा में किसी प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न न हो, इसलिये उक्त दोनों बीरों से प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाकर गुजरात प्रदेश की शासन डोर सेनापति को अर्पित कर दी। मालवा में पेशवा की ही प्रधानता स्थिर रही। परन्तु बाजीराव को गुजरातका आधा कर यशवन्त राव को देना होगा और सर बुलन्द खां तथा अन्यान्य परगनों से वसूल की हुई मालगुज़ारी स्वयम् महाराष्ट्रपति के स्वाधीन करनी होगी, ❀ यह शर्त निर्धारित कर दी।

❀ जिस समय सेनापति त्र्यम्बकराव की माता "उमाबाई" ने यह समाचार सुना कि उनके पुत्र त्र्यम्बक राव युद्ध में बाजीराव द्वारा परलोक वासी हुए तो वह मारे क्रोधके जल उठी और पुत्र का प्रतिशोध लेने की उसने प्रतिज्ञा की। उसी समय महाराज शाहू ने त्र्यम्बकराव के पुत्र को उनके स्वर्गीय पिता के पदपर प्रतिष्ठित कर बाजीराव से मित्रता करा दी और बाजीराव को 'उमाबाई' के हाथ सौंप दिया। तथा उन्हें भी अपना पुत्र समझने की प्रार्थना की। यह महाराष्ट्र महिला साधारण स्त्री न थी। इसने अपनी वृद्धवस्था में भी शत्रुओं को रणाङ्गण में परास्त किया था। एक समय उसने अहमदाबाद के सूबेदार "जोरावर खां" से युद्ध किया था। इस युद्ध में इसने स्वयम् सेना नायक का कार्य्य कर शत्रु को शिकस्त दी थी। जोरावर खां की

इस प्रकार दोनों वीरों को सन्धि सूत्र में बांध कर महाराज शाहू ने गृहाग्नि को शान्त किया। इस कार्य के साथ ही साथ महाराज शाहूने एक और गृहकलह रूपी अंकुर को नष्ट किया। उन्होंने पीलाजी गायकवाड़ के साथ बाजी राव की मित्रता स्थापित कर दी और पुत्र शोकातुर वृद्ध गायकवाड़ को 'सेना खासलेस' की उपाधि प्रदान कर उनका विशेष मान सम्मान किया था। इस भाँति बुद्धि चातुर्य द्वारा आपसका वैमनस्य दूर कर उपरोक्त वीरों को पेशवा के मित्रत्व पाश में आबद्ध करा कर महाराज शाहू ने पुनः पूर्व से भी अधिक योग्यपद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। जिस कारण, आपस की फूट नष्ट हो गयी। सब मिल कर राष्ट्र की उन्नति में योग देने लगे।

त्र्यम्बकराव की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनी जिविता वस्थामें आरंभ किया हुआ प्रति वार्षिक 'विद्वत्सम्मेलन' बन्द हुआ चाहता था। किन्तु वीरवर बाजीराव ने महाराष्ट्रपति पर जोर देकर उसे पुनः चालू किया। इस कार्य में उनका प्रति वर्ष ६०-७० सहस्त्र रुपया व्यय होता था। बाजीराव

प्रचण्ड सेनाको मुट्ठी भर महाराष्ट्र वीरोंकी सहायता से उमाबाई ने अस्त-व्यस्त कर दिया था। महाराष्ट्रपति ने इस वृद्ध वीरांगना को रत्न जड़ित सुवर्ण कंकण प्रदान किया था। इसका स्वर्गवास सन् १७४७ ई० में हुआ।

की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र बालाजी राव ने इस कार्य को और भी अच्छे ढंग से निभाया।

उनका इस कार्य में प्रति वर्ष छः लाख रुपया खर्च होता था। विद्वान ब्राह्मण सनातन-वैदिक धर्म का प्रचार करते थे। यदि वीर पेशवा और अधिक दिवस तक अपनी पूर्व स्थिति पर रहते तो न जाने यह विद्वत्तासम्मेलन कितने बड़े २ कार्य करता। अंगरेजों ने भी पेशवा की इस व्यवस्था को सन १८५१ ई० तक कायम रखा। कुछ काल के उपरान्त उस धन के व्याज से विद्वान ब्राह्मणों को आँशिक वृत्तियाँ दी जाने लगीं। तथा मूल धन (साउथ प्राइज़ कमेटी) और दक्षिणा 'फेलोशिप' परीक्षा में रखा गया था।' साउस प्राइज़ कमेटी से अब भी महाराष्ट्रीय भाषा में अच्छे ग्रन्थ लिखने वाले लेखक को योग्यतानुसार ५०) से ५००) रुपया तक पुरस्कार दिया जाता है।

सेनापति यशवन्त राव के साथ मित्रत्व स्थापित होने पर बाजीराव पेशवा निजाम को परास्त करने के हेतु भीषण तैयारी करने लगे। निजाम यह समाचार सुन कर मारे डर के घबरा उठे। उन्हें वीर बाजीराव का पराक्रम पूरी तरह अवगत था। अतः वह इस समाचार को सुनते ही बाजी राव से सन्धि करने को प्रस्तुत हो गये। उन्होंने बाजी-राव पेशवा के पास जो प्रार्थना पत्र भेजा था, उसका यह आशय था:—

"अब से निज़ामुल्मुल्क महाराष्ट्रीयों के किसी भी कार्य में हस्तक्षेप न करेंगे। उन्हें पेशवा का आधिपत्य स्वीकार है।"

बाजीराव ने इस प्रस्ताव को पढ़ कर उन्हें क्षमा कर दी। उनसे छुट्टी पाकर पेशवा ने कुछ दिन तक महाराष्ट्रियों की राजधानी सितारा में रह कर वहाँ की अन्तस्थ राज व्यवस्था सुधारने, देश के हित-शत्रुओं का मान मर्दन करने एवम् आवश्यक नियम बनाने में ध्यान दिया। इसके पश्चात् आप मालवा चले गये। वहाँ उनका निज़ाम से साक्षात् हुआ। उस समय उन दोनों में यह स्थिर हुआ कि, अब से मालवा जाते समय महाराष्ट्रपति की सेना निजाम के अधिनस्थ देशों को किसी प्रकार का त्रास न देगी। परन्तु अपनी प्रतिज्ञा (सन्धि पत्र) के अनुसार निज़ाम महाशय को भी राज्यभर की चौथ और सरदेशमुखी का कर बिना किसी आपत्ति के दे देना होगा। निज़ाम ने पेशवा की यह शर्त स्वीकार करली थी।

—❀✱❀❀❀✱—

१४

सिद्दिओं से संग्राम ।

—०:❀✻❀:०—
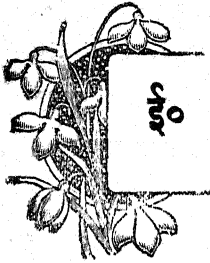
ई० सन् १७२६ से ही महाराष्ट्रियों और जँजीरा के सिद्दिओं में द्वेष फैला हुआ था। द्वेष दर्पित सिद्दी समूह जान बूझ कर हिन्दुओं से व्यर्थ की छेड़-छाड़ करता था, और बिना कारण उन्हें लूटना, बुरी तरह घायल करना-मारना यह तो उसका मामूली काम था । वह देवालय धर्म शालायें आदि नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दुओं को विभिन्न प्रकारों से कष्ट देते थे। उनके इस अत्याचार से हिन्दू लोग घबरा उठे। उन्होंने छत्रपति महाराज शाहू से इन अत्याचारियों के हाथ से मुक्त करने की प्रार्थना की थी। महाराज शाहूने भी उनकी बार-बार की शिकायत से घबड़ा कर ईस्वी सन् १७३० ई० में अपने प्रति निधि श्रीपतिराव को सिद्दिओं का दमन करने के हेतु भेज

दिया। परन्तु दैववशात् श्रीपतिराव उन्हे परास्त न कर सके। उपरोक्त घटना कई बार हो चुकी। किन्तु महाराज शाहू की निर्बलता के कारण सर्व्वदा सिद्दियों की ही जीत रही। बार-बार महाराष्ट्रीय सेना को हराने से सिद्दिओं का घमण्ड और भी बढ़ गया। वह हिन्दुओं को बल पूर्वक 'इस्लाम' धर्मसे दीक्षित करने लगे। जंजीराकी दीन-हीन हिन्दू प्रजा इस आसुरी अत्याचार से घबड़ा उठी। धनी हिन्दू दर-दर के भिखारी बन गये। अच्छी-अच्छी .कुल कामिनियों का घरसे निकलना बन्द होगया। धर्म्मान्ध मुसलमान इस्लाम धर्म्म के प्रचार के हेतु हिन्दुओं के घर में घुसते एवम् विविध भांति के आसुरी अत्याचार करते थे।

धीरे-धीरे ई० स० १७३३ में यह समाचार वीरवर बाजी-राव को मिला। वह मालवा से लौट कर सिद्दिओं को दण्ड देने के लिये जंजीरा की ओर बढ़े। उस समय उन्होंने अपने सहायक सेंधिया और होलकर को मालवा प्रदेश की निगरानी के लिये छोड़ दिया था। जब सिद्दियों ने बाजी-राव का आगमन सुना तब वह भी युद्ध के लिये प्रस्तुत हो गये। परन्तु वीर पेशवा के प्रचण्ड पराक्रम के सम्मुख उनकी दाल न गली। वीर महाराष्ट्रोंने उन्हें चुन-चुन कर यमसदन का मार्ग दिखला दिया। बचे खुचे सिद्दी ज़र्जर होकर भाग खड़े हुए।

इस विजय से जंजीराके ११ परगनों की आमदनी का

आधा भाग महाराज शाहू को प्राप्त हुआ। छत्रपति महाराज शिवाजी की राजधानी 'रायगढ़ और चार अटूट दुर्ग' महाराष्ट्रों के हाथ आये। जंजीरा में पुनः एक बार शान्ति स्थापन हुई।

इस प्रकार वीर बाजीराव पेशवा ने कुछ ही मास में उन दुर्दान्त शत्रु सिद्दिओं को नेस्त-नाबूद कर दिया। अस्तु, इस प्रकार सिद्दियों को पराजित कर, वीर बाजीराव पेशवा सितारा में जा उपस्थित हुए। महाराष्ट्रपति उनकी इस विजय से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने पेशवा को इस कार्य के पुरस्कार स्वरूप 'रायगढ़' दुर्ग और उसके आस-पास के देशों का आधिपत्य प्रदान किया।

बाजीराव पेशवा

बीर मराठा बाजीराव पेशवा ।

१५
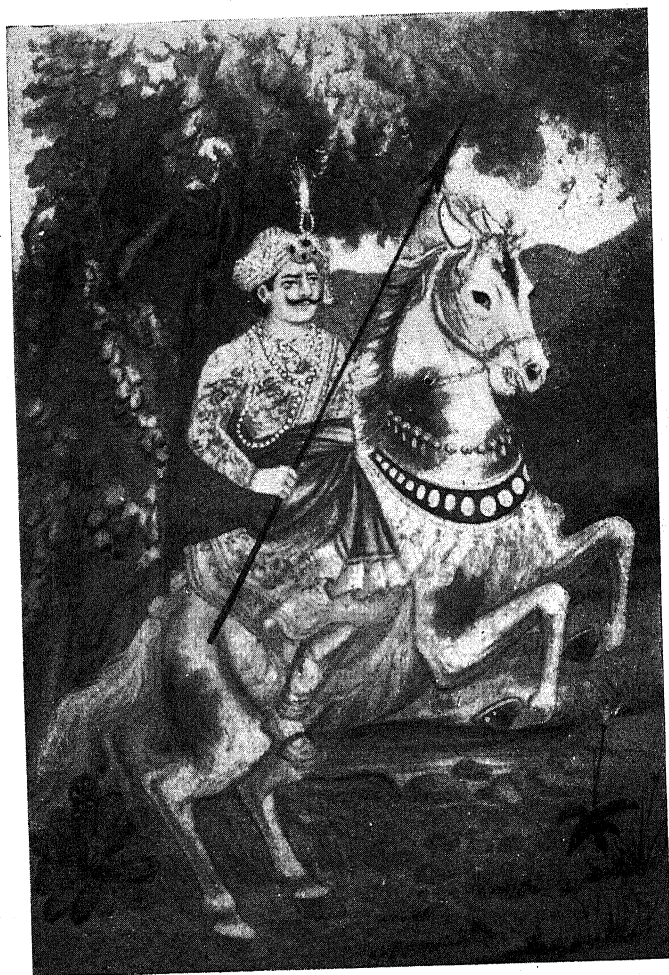
मालवा के राजा गिरिधररायकी मृत्यु, मालवामें अराजकता, बाजीराव को निमन्त्रण ।

शवा के प्रचण्ड पराक्रम द्वारा जंजीरा में शान्ति स्थापन होनेपर जंजीरा के ११ परगनों की आमदनी का आधा हिस्सा महाराष्ट्रपति के हाथ लगा। इस घटना के पूर्व निज़ाम महोदय के साथ महाराज शाहू की जो नवीन सन्धि स्थापित हुई थी उसके कारण इस समय दक्षिण भारत में सम्पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई थी। इसके पश्चात् बाजीरावने पुनः मालवा प्रदेशकी ओर दृष्टिपात किया। मालवा और मुगल साम्राज्य में दिन-प्रति-दिन जो नवीन राजनैतिक परिवर्त्तन हो रहा था, उसे पाठकगण पढ़ ही चुके हैं। परन्तु महम्मद शाह के राजत्वकाल में इससे कहीं अधिक उपद्रव

होने लगे। इधर अधिकार शून्य राज पुरुषों के अत्याचारों ने प्रजावर्ग में त्राहि-त्राहि मचा रखी थी और उधर मुगलों के दुर्व्यवहार तथा 'ज़ज़ीया' कर से राजपूताना के राजा लोग दुखित होकर यवन साम्राज्य का नाश चाहते थे। किन्तु बेचारे निर्व्बल होनेके कारण अवसर की में चुप चाप कान में तेल डाले बैठे रहे।

ठीक इसी समय मालवाके राजा गिरिधर राव स्वर्ग वासी हुए। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सम्बन्धी "दया बहादुर" ने मालवा प्रदेश की सूबेदारी पर अधिकार जमाया। परन्तु दया बहादुरके अनुचित व्यवहार से प्रजा असन्तुष्ट हो उठी। उसके राज्य कर्म्मचारियों ने प्रजाको और भी कष्ट दिये। बड़े-बड़े ठाकुर एवम् जमीदार सूबेदार उनके नारकीय अत्याचार देखकर काँप उठे। उन बेचारों ने कई वार उनके आत्यचारोंसे घबड़ा कर दिल्ली दरबार से उद्धार पाने की प्रार्थना की। परन्तु व्यर्थ! उनकी उस दीन प्रार्थना का कोई फल न हुआ। अन्त में सभोंने हताश होकर वीर पेशवा को लिखा। उन्हें विश्वास था कि, वीरवर पेशवा के अतिरिक्त कोई भी नररत्न उन्हें उस विपत्तिसे विमुक्त न कर सकेगा।

जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह हिन्दू जाति और सनातन वैदिक धर्म के सच्चे रक्षक थे। मुगल राज दर्बार में भी आपका विशेष मान-सन्मान था। परन्तु निर्बल होने के

कारण वह हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म का नाश होता देख कर भी कुछ न कर सके। हिन्दुओं की दुर्दशा देखकर उनका हृदय अवश्य दुखित एवम् क्रोधित हो उठता था। परन्तु निरूपाय थे। बेचारे मुट्ठीभर राजपूतों को लेकर कहां तक मुगलोंके सेना-समुद्रका सामना करते ? अतः उन्होंने अपने यहां के समस्त हिन्दू राजाओं से सलाह कर वीरवर बाज़ीराव पेशवाको मुगलों का दर्पदलन करने के लिये निमन्त्रित किया। वीर पेशवा तो यह चाहते ही थे। उनकी तो समस्त भारतको महाराष्ट्र शासनके अन्तर्गत करने की इच्छा ही थी। अतः वह बड़ी प्रसन्नता से इस कार्य के निमित्त तैय्यार हो गये।

उन्होने अपनी सेनाको तैय्यार कर अपने वीर सेनापति मल्हारराव होलकर पर मालवा विजय का सारा भार सौंप दिया तथा उन्हें बारह सौ वीर महाराष्ट्र योद्धा सौंप कर मालवे भेज दिया। जब होलकर अपनी सेना सहित बुढ़ानपुर में जा पहुँचे तब इन्दौर के जमीदार नन्दलाल राव भी उनके साथ नर्म्मदा नदी तक चले गये।

इधर सूबेदार दया बहादुर ने जब यह समाचार सुना तब वह भी अपनी सेना लेकर शत्रु पक्ष से भिड़ने के हेतु आगे बढ़े। उन्होंने मालवा में प्रवेश करने के समस्त रास्तोंपर मुगल सेना तैनात कर दी। किन्तु इधर नन्दलाल राव मालवा के रहने वाले होने के कारण वहां के अनेक गुप्त मार्गों से

भली भाँति परिचित थे। अतः महाराष्ट्रीय सेना को गुप्त मार्गों द्वारा मालवा में प्रवेश करते कोई कष्ट न हुआ।

मालवा राज्य में प्रवेश करते ही महाराष्ट्रीय सेना एक बारगी 'हर हर महादेव' कहती हुई आगे बढ़ी। दया बहादुर उसे सुनकर हक्का-बक्का हो रहे। किन्तु अन्य कोई उपाय न देखकर वह अपनी पठानी सेना सहित महाराष्ट्रीय सेना से भूझ पड़े। थोड़ी देर में दोनों पक्ष का तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया। खूब घमासान हुई। लाशों के ढेर लग गये। इस युद्ध का फल यह हुआ कि, वीर महाराष्ट्रों द्वारा दया बहादुर और उनकी तीन हजार पठानी सेना 'बिहिश्त'' की ओर भेजी गई। बची बचायी सेना अपने भाइयों के साथ ''बिहिश्त' की सैर स्वीकार न कर समर भूमि से भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार युद्ध में सुबेदार दयाबहादुर का नाश कर महाराष्ट्रों ने मालबा प्रदेश में अपना आधिपत्य स्थापन किया। मालावा निवासी महाराष्ट्रों के सुशासन से अत्यन्त आनन्दित हो उठे। यह घटना सन् १७३२ ई० तक की है।

दिल्लीश्वर के अधिकार से मालवा प्रदेश निकल जाने से बादशाह को बड़ा दुःख हुआ और उसे पुनः हस्तगत करने के लिये उन्होंने महम्मद खाँ बंगष को आज्ञा दी। बंगष लाख चेष्टाएं करने पर भी मालवा को दिल्लीश्वर के आधीन न कर सके। जब बादशाह ने उन्हें इस कार्य में असमर्थ देखा तब

उन्होंने यह कार्य भार महाराज जयसिंह को सौंपा। परन्तु इसके पूर्व ही बालाजी विश्वनाथ पेशवा और जयपुराधिपति में मित्रता स्थापित हो चुकी थी तथा वर्त्तमान मालवा विजय में भी सवाई जयसिंहजी का ही हाथ था। अतः वह इस कार्य से मुंह मोड़ गये। दिल्लीश्वर उन्हें बहुत मानते एवम् डरते थे। अतः उन्होंने तात्कालिक रूप से महाराज का अनुरोध स्वीकार कर लिया। परिणाम यह हुआ कि मालवा प्रदेश का स्थायी शासनाधिकार जयसिंह जी के द्वारा महाराष्ट्रियों के हाथ आ गया।

बाजीराव ने मालवा प्रदेश के लिये बादशाह के पास सनद माँगी। परन्तु उन्होंने लिखित सनद पत्र देना अस्वीकार कर दिया तथा गुजरात देश के सरबुलंद खां से मिलने वाली चौथ और सरदेश मुखी को भी अनुचित बतलाया एवम् बेचारे बुलन्द खां को उनके पद से हटाकर उनकी जगह जोधपुर के महाराजा अभय सिंह को गुजरात का 'सूबेदार' बनाया।

जोधपुर के महाराज अभय सिंह बड़े अभिमानी और अत्यन्त क्रूर स्वभाव के पुरुष थे। उनकी क्रूरता के सम्बन्ध में इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि, उन्होंने जोधपुर की गद्दी पर बैठने के लिये अपने पूज्य पिता को मार डाला था। उन्होंने पिलाजी गायकवाड़ को युद्ध में परास्त कर उन्हें धोखेसे गुप्त-घातक द्वारा मरवा डाला। महाराष्ट्रीय

वीर इस समाचार को सुनकर क्रोध के मारे आग बबूला हो गये। उन्होंने भूखे सिंह की भांति राठौर और मुगल सेना पर टूट कर तुरत अपनी प्रतिहिंसा की आग बुझा ली। महाराष्ट्रियों की रक्त-पियासू तलवार के सम्मुख वीर अभय सिंह की सैना खड़ी न रह सकी। स्वयम् अभय सिंह महाराष्ट्र वीरों द्वारा आहत होकर रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए और सीधे जोधपुर जाकर ही पनाह ली।

इस प्रकार युद्ध कर गुजरातको अधिकार में करनेपर भी महाराष्ट्रियों को दिल्लीश्वर से लिखित सनद प्राप्त न हुई। अतः उन्हे सन् १७३३ ई० में अपने वीर सेनापति होलकर और सेन्धिया को दिल्ली और आगरा लूटकर आधीन बनाने के हेतु भेजना पड़ा।

बाजीराव की उपरोक्त आज्ञा का एक विशेष कारण यह भी था कि, उस समय उनका सामरिक खर्च बढ़ जाने से उनकी आर्थिक दशा कठिन हो रही थी। वह इसके कारण बड़े त्रस्त थे। बहुत कुछ विचार करने पर उन्होंने इस कष्टसे छुटकारा पाने के हेतु दिल्ली पर आक्रमण करनेका निश्चय किया और अपने दल-बल सहित दिल्ली की ओर रवाना हो गये।

धीरे-धीरे जब महाराष्ट्रीय सेना चम्बल नदी तक आ पहुंचीं तब होलकर ने एक विशाल सैन्य समूह के साथ

आगरेकी ओर प्रस्थान किया । स्वतंत्रता देवी के सच्चे पुजारी वीर महाराष्ट्रों की विकराल कृपाण और लपलपाते हुए भीषण भालों के दर्शन कर बादशाह सलामत अत्यन्त भयभीत हुए और उनके प्रधान 'वजीर आजम' (खान दौरा) ने महाराष्ट्रों के पास सन्धि का प्रस्ताव पेश किया। महाराष्ट्रवीरों ने इस पत्रके उत्तर में मालवा प्रदेश तथा गुजरात प्रदेशकी सरदेशमुखीका सनदपत्र मांगा। परन्तु बादशाह के तुरानी सरदार इसके विरुद्ध थे । अतः उन्होंने वीर पेशवा के पास यह समाचार भेजा कि,— "सनद पत्र के बदले में मैं महाराष्ट्रों को दक्षिण भारतके मुगल शासित प्रदेशों से तेरह लाख रुपये वार्षिक की आय का तथा पश्चिममें बूंदी और कोटा से लेकर पूर्व की समस्त रजपूत रियासतों से दस लाख साठ हजार रुपये वार्षिक आय का कर (मालगुजारी) वसूल करनेका अधिकार प्रदान करने को तैयार हूं।" अन्तिम अधिकार प्रदान करने में खान दौरा, दिल्ली सम्राट तथा अन्य सरदारोंका एक गुप्त उद्देश्य यह था कि, लोग जब महाराष्ट्र, राजपुताने से कर वसूल करेंगे उस समय रजपूतों से अवश्य उनकी मुठभेड़ होगी। समस्त राजस्थान के रजपूत उनकी जानके ग्राहक बन जायंगे। इस तरह एक ही बाण में दो शिकार मर जाने पर मुसल्मानोंको अपना पुनरुद्धार करने का अवसर मिलेगा और वह अवश्यही उसमें सफल होंगे। परन्तु

उन क्षुद्र मग्ज़ो को इस बात का जरा भी ध्यान न हुआ कि बाजीराव ऐसे राजनीति धुरन्धर व्यक्ति को उनकी यह चाल समझते देर न लगेगी। जब वीर पेशवाको यह समाचार ज्ञात हुआ तब वह तुरतही भाँप गये और बादशाह के उक्त प्रस्ताव को रद्द कर उनके पास एक नूतन प्रस्ताव भेजा। वह इस प्रकार हैं—

(१) सम्पूर्ण मालवा महाराष्ट्रों को जागीर के स्वरुप में प्राप्त होना चाहिये।

(२) इस प्रदेश के जिन-जिन स्थानोमें रोहिलोका अधिकार है उन समस्त प्रदेशों को अपने अधीन बना लेने की आज्ञा मिलनी चाहिये।

(३) 'राशीन' 'माण्डू' और 'धार' इन तीनो गढ़ो पर महाराष्ट्रों का पूर्ण अधिकार होगा।

(४) चम्बल नदी के सम्पूर्ण दक्षिण भाग पर महाराष्ट्रों का अधिकार होना चाहिये।

(५) दक्षिण भारत में "सर देश पाण्डे" पद का अधिकार पेशवा प्राप्त होना चाहिये।

(६) काशी प्रयाग, गया और मथुरा आदि पुण्य तीर्थो का अधिकर महाराष्ट्रों को प्राप्त होना चाहिये।

(७) सर्व्व प्रथम बादशाह सलामत पचास लाख रुपया नगद अथवा 'वंगदेश' का कुछ अंश महाराज शाहू को प्रदान करें।

इस प्रकार बाजीराव ने एक सन्धिपत्र तैयार करके बादशाह के पास भेजा। परन्तु बादशाह सलामत उन शर्त्तों से इन्कार कर गये। मन्त्री खान दौराने इस अवसर को अपने स्वार्थ साधन का अच्छा मौका समझा और गुप्त रूप से पेशवा से छः लाख रुपया लेकर उन्हें सम्पूर्ण दक्षिण प्रदेश में सरदेश पांडे का अधिकार लिख दिया।

इस प्रकार ६० लाख रुपये वार्षिक आय का मुल्क हस्तगत कर बीरवर बाजीराव पेशवा दक्षिण लौट गये। खान दौरा का पूर्वही से निज़ाम के साथ वैर था। अतः उन्होंने निज़ाम से प्रतिशोध लेनेके उद्देश्यसे ही पेशवाको समस्त दक्षिण भर में सरदेश पाण्डे का अधिकार प्रदान किया था। चतुर राजनीति विशारद बाजीरावने निज़ाम को अपने आधीन करने का यह उत्तम अवसर हाथ से न जाने दिया। उन्होंने दिल्लीपति के मन्त्री खान दौरा को ६ लाख रूपया देकर 'सरदेश पाण्डे' का पदाधिकार प्राप्त कर लिया। इस घटनासे निजामुल्मुल्क बाजीरावके प्रति जल-भुन कर राख होगये।

—❀❀❀❀•✱—

१६

(वीर बाजीराव का मुगलों से युद्ध)

गत परिच्छेद में पाठक जान ही चुके है कि, वीरवर बाजीराव ने दिल्लीश्वर के सन्मुख जो प्रस्ताव पेश किया था, वह अस्वीकार हुआ था। अतः वह इस विषय में दूसरे ही किसी उपाय द्वारा कार्य साधन करने का विचार एवम् प्रयत्न करने लगे।

उन्होंने दिल्ली पर आक्रमण करने के हेतु एक विशाल सेना तैयार की। इस समाचार को सुनकर दिल्लीश्वर के होश पस्त हो गये। उन्होंने यह सूचना समस्त दरबारियों को दे दी तथा निज़ाम से भी अपने कृत अपराधों की क्षमा माँगते हुए सहायता की याचना की। निजाम दिल्लीपति की पुकार सुनकर अपने पूर्व भेश को भूल गया और भाई की सहायता करने के हेतु दल-बल सहित दिल्ली की ओर चल पड़ा।

वीर पेशवा निज़ाम की यह निमक हरामी सुनकर क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने तत्क्षण अपनी सेना लेकर किले की ओर

बयान किया। मार्गमें चलते-चलते उस रणकुशल वीर पुङ्गवने अपनी सेनाका एक खासा भाग बुन्देलखण्डाधिपति राजा जगतसिंहके हाथ सौंप दिया और आप कुछ चुने हुए अश्वारोही सैनिक लेकर दिल्लीकी ओर बढ़े। दिल्लीश्वरकी बादशाही सेना उनसे मोर्चा लेनेके हेतु आगरे की ओर अग्रसर हुई।

पेशवाके प्रधान सेनापति वीर होलकर अपने चुने हुए वीरों के साथ आगरा पहुँचने भी न पाये थे कि बीच ही में अयोध्या के सूबेदार 'सहादत खां' ने सहसा उनपर आक्रमण किया। इस आकस्मिक आक्रमणसे महाराष्ट्रीय सेना बिल्कुल अपरिचित थी। अतः उसके पैर उखड़ गये। मल्हारराव होलकरको भागकर यमुनाके उसपार आश्रय ग्रहण करना पड़ा।

इस क्षुद्र जयलाभसे सहादत खां गर्व्वके मारे फूल कर कुप्पा हो गया। उसने अपना बड़प्पन दिखानेके हेतु दिल्ली सम्राटके पास एक लम्बा चौड़ा खलीता भेजा। जिसमें मनमाना रूपसे उसने अपनी बहादुरीके स्तुति स्तोत्र गाये थे तथा यहभी लिख दिया था कि, उसीके अतुल प्रतापके कारण मल्हारराव होलकर यमुनाके उस पार भाग गये हैं। इस पत्रको पढ़ कर दिल्लीके दर्बारीगण एवम् बादशाह सलामत बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने वीर मल्हारराव का सहादत खाँ द्वारा हार जाना

ही मानों महाराष्ट्रीय शक्तिका अन्त हो जाना समझा और इसी कारण आनन्दोन्मादके वशीभूत होकर बिना कुछ आगा-पीछा सोचे उन्होंने आगरा स्थित महाराष्ट्र दूतको बुरी तरह अपमानित कर आगरेसे निकाल दिया। यह घटना सन् १७३४ ई० में घटी थी।

जिस समय उक्त घटना घटी, उस समय वीर पेशवा राजपुतानेसे 'कर' वसूल करनेके हेतु वहीं उपस्थित थे। वह "वहाँसे अपना कार्यक्रम समाप्तकर होलकरकी सेनामें सम्मिलित होने की तय कर चुके थे। उन्होंने मार्गमें ही महाराष्ट्रीय सेनाका पराजय सुन लिया था। जिसे सुनते ही वह प्रतिदिन २० कोस की रफ़्तारसे अपनी सेनाको लेकर दिल्ली पहुँच गये। दिल्लीमें पहुं-चतेही पेशवाकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी और उन्होंने इस बातकी प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक वह दिल्ली-पतिसे महाराष्ट्र दूतके अपमानका प्रतिशोध न लेंगे कभी शान्त न होंगे।

उनके आगमनसे दिल्लीमें अजब तहलका मच गया। चारो ओर लोग त्राहिमाम्-त्राहिमाम् मचाने लगे। किन्तु वीर पेशवा प्रजापुञ्जको किसीभी तरहका त्रास देना नहीं चाहते थे। उन्होंने बिना किसी झगड़ा-फ़िसाद के इस मामलेको तय करनेके विचारसे एकबार अपने

अन्तिम प्रयत्न स्वरूप एक सन्धि प्रस्ताव दिल्लीपतिके पास लिख भेजा।

इसी बीच सूबेदार सआदत खां एक विशाल सेना लिये आगरामें जा डँटे। अब तो पेशवाने समझ लिया कि, बिना युद्ध किये म्लेच्छोंकी बुद्धि ठिकाने नहीं आ सकती। लातके देवता बातसे नहीं मानते। यही विचार कर उन्होंने अन्तमें युद्ध करनाही निश्चय किया और दिल्ली के ईशान-कोण स्थित एक विशाल मैदानमें पड़ाव डाला। इधर जैसा ऊपर लिखा है, पेशवाका सन्धि प्रस्ताव पाकर दिल्ली दर्बारके अमीर उमराव यह समझे, कि, पेशवा भयभीत हो गये हैं। इसी विचारसे प्रेरित होकर पेशवाको युद्धसे भयभीत जान उन्होंने एक-ब-एक आठ हजार सेना लेकर बाजीराव पर चढ़ाई कर दी। किन्तु वीर पेशवातो पूर्वहीसे सावधान थे। उन्हों ने देखते-देखते मुगलोंको छका मारा। महाराष्ट्रीय सुदीर्घ शिखासे युद्ध करते-करते वेचारी दाढ़ीके होश फ़ाख़्ता हो गये। उनकी सारी अकड़फूँ जहाँकी तहाँ ठण्ढी हो रही। परिणाम स्वरूप यवनोंके दो हज़ार घोड़े और एक हाथी पेशवाको प्राप्त हुआ। इसी भांति बाजीराव दिल्ली के सर्दारोंको परास्त कर ज्योंही विश्रामकी सोच रहे थे त्योंही सहसा एक मुग़ल सेनापति कमरुद्दीन खां ने उन पर आक्रमण किया। पुनः एक बार मरहठों एवम्

मुगलोंकी गहरी मुठभेड़ हो गयी। सारे दिन उभय पक्षीय वीर पुङ्गव इस तरह जान तोड़ कर लड़े कि, सायङ्काल तक विजय लक्ष्मी इसी बातका निश्चय न कर सकी कि, किसे वरमाल पहिनायी जाय। निदान निशादेवीका घोर साम्राज्य फैलतेही दोनोंको अपनी-अपनी तलवारें म्यान में करनी पड़ीं। महाराष्ट्र वीर पेशवा कृष्णपक्षीय निषा के घनघोर अन्धकारमें ही मुगलदलसे भूझनेके हेतु तैय्यार हो गये। किन्तु इतनेहीमें मुगलोंने वीरवर वाजीरावका वर्चस्व स्वीकार कर लिया और दिल्लीपतिके मन्त्री ख़ानदौराको भेजकर वीरवर बाजीरावसे सन्धि की प्रार्थना की। इसी समय दैववशात् बाजीरावको महाराष्ट्र पतिकी ओरसे कोंकण स्थित अंग्रेजोंका दमन करने के हेतु बुलाहट हुई। जिसके कारण उन्हें बाध्य होकर इस समय दिल्ली नरेशसे सन्धिकर सितारे की ओर अग्रसर होना पड़ा। इस सन्धिके उपलक्षमें वीरवर वाजीरावको महाराष्ट्र पतिको १२ लाख रुपये नगद और मालवेका एक हिस्सा भेंट देना पड़ा था।

१७

(निज़ामुल्मुल्कके साथ महाराष्ट्रोंकी मुठभेड़)

उक्त युद्धमें दिल्लीश्वरकी सहायता करनेके कारण निज़ामुल्मुल्कके पुत्रों को बादशाहकी ओरसे मालवा और गुज़रात प्रदेशकी सूबेदारी मिली थी। निज़ामुल्मुल्कने दिल्ली नरेशसे इस आशयका एक पक्का सनद-पत्र करवा लिया था। किन्तु उनकी सेना हैदराबादसे दिल्ली तक पहुंचनेके पूर्व्वही सुदक्ष बाजीरावने वह चाल चली जिसके कारण दिल्लीपतिकी सभी चालों और परिश्रमोंपर पानी फिर गया। निज़ामके पहुंचनेके पूर्व्वही दिल्ली की सेनाका तीन-तेरह हो गया।

बाजीरावने जिस समय निजामका दिल्लीश्वरके सहायतार्थ जानेका समाचार सुना था, उस समय उन्होंने अपने भ्राता चिमणाजी अप्पाको इस बातकी सूचना कर दी थी और लिख दिया था कि, वह निज़ामके पहिलेही

तीरकी तरह नर्म्मदा पार कर जाँय और निजामका मार्ग रोक दें। किन्तु चूँकि, चिमणाजी अप्पा उस समय पोर्तुगीज़ोंका दमन करने में व्यस्त थे, इस कारण वह बाजीरावकी इच्छा पूर्ण करनेमें असमर्थ रहे। निजाम अपना मार्ग निष्कण्टक पाकर बड़ी सरलतासे अपना दल-बल लिये नर्म्मदा पार कर गया और सीधा दिल्ली सम्राट के सन्मुख जा उपस्थित हुआ।

उधर दिल्ली सम्राटने वीरवर बाजीरावसे जो सन्धि की थी, उसे वह कुछ कालमें ऐसे भूल गये, मानो वैसी कोई सन्धि हुई ही नहीं थी। उन्होने अपने स्वाभाविक अहंकार में आकर निजाम को पुनः महाराष्ट्रोंके विरुद्ध उत्तेजित किया। केवल इतनाही नहीं, वरन् इस समय उन्होंने अपने समस्त राजपूत शूर सामन्तो के भी मनमानारुपसे कान भरे। उन्हें निजाम की सहायता करने को कहा। इस युद्धमें वीरवर बून्दी नरेश को छोड़कर सारे राजपूत नरेश निजामके साथ रहे। यहांतक कि, जयपुर नरेश महाराज जयसिंहको भी बाध्य होकर अपने पुत्रको निज़ाम की सहायता के लिये भेजना पड़ा था। रोहिला सर्दारभी निजामही के पक्षमें थे।

इस प्रकार विविध सहायक देख कर निजाम मारे घमण्डके फूलकर कुप्पा होगये और पेशवासे युद्ध करने के हेतु मालवाके अन्तर्गत 'सिरोञ्ज' में जा उपस्थित हुए।

उस समय उनके साथ प्रायः एक लाख सेना थी। इसके अतिरिक्त कोटाके राजा दुर्जयसाल और अयोध्याके नवाब सआदत खांके भतीजे बीस हजार सेना लेकर अकस्मात उनकी सहायता करनेको प्रस्थान कर चुके थे। उधर औरंगाबादमें दस बारह हजार यवन सैनिक पहिलेही से पेशवाकी गति रोकनेके लिये तैयार बैठे थे।

इधर वीर पेशवाको यह हाल मालूम होते ही वह भी ८० हजार महाराष्ट्र बीरोंको लेकर निजामपर दौड़ गये।

भूपाल दुर्गके पास निजाम का सेना शिविर था। उस स्थान पर शिविरके ओर एक नदी सर्पाकार बह रही थी और दूसरी ओर एक विशाल तड़ाग लहरा रहा था। इन दोनो जल प्रान्तोंके मध्यमें रहनेसे उन्हे अपनी सेना की विशेष सुरक्षा मालूम हुई। वह सोचने लगे कि, प्रकृति के वह दो सुदीर्घ जल-स्रोत महाराष्ट्रों के आक्रमणको किले की दीवालकी तरह रोकने में सहायक होंगे तथा उनकी सेना सुरक्षित रहेगी।

इस भाँति अपनी बुद्धिके अनुसार अपनी रक्षाका प्रबन्धकर वह पेशवाके आक्रमणकी प्रतीक्षा करने लगे। अब भी वह पेशवापर पहिले वार करनेसे डरते थे निदान पेशवा छाती पर पहुंच ही गये। उन्होंने आकर पहिले ही दिन पांच सौ निज़ामियों को युद्ध भूमि में सुला दिया।

परिणाम स्वरूप उसी दिन यवनों के ७०० अश्व महाराष्ट्र वीरों को प्राप्त हुए ।

दूसरे दिन पुनः युद्ध हुआ । उस दिन निज़ामके पन्द्रह सौ सैनिकोंने रणभूमिमें प्राण विसर्जन किये। पेशवाने शत्रुकी सेनाको चारो ओर से घेर लिया तथा उसपर तोपोंकी भीषण मार करनी आरम्भ करदी। इस तरह हर प्रकारसे अपनी हानि होते देख निज़ाम के होश दुरुस्त हो गये। उनकी दशा उस समय ठीक पिञ्जड़ेमें फंसे हुए पक्षी की तरह हो गयी थी। अस्त्र-शस्त्र तथा रसद पानी समाप्त हो चला था। विवश होकर उन्होंने बादशाहके सन्निकट एक विश्वस्त अश्वारोही द्वारा अपना समस्त कच्चा चिट्ठा लिख भेजा। परन्तु उधर वज़ीर खानदौरा और बादशाह में विद्वेश होजानेके कारण दोनोंमेंसे कोई भी निज़ामकी सहायता करने नहीं गये न उन्हे अस्त्र-शस्त्र या रसद्पानी ही भेजा गया । अयोध्याके नवाब निज़ामके सहायतार्थ बीस हजार सैनिक लेकर चल चुके थे। परन्तु अब तक उनका भी पता न रहा।

धीरे-धीरे निज़ामी सेनामें रसद पानीका विल्कुलही अभाव हो गया। निज़ामी-सेना बुभुक्षित होकर मन-ही-मन निजामको कोसने एवम् जीतेजी मौत का मज़ा उठाने लगी। निजामका पुत्र नवाव "नासिरजंग" अपने पिताकी सहायताके हेतु भूपालके मार्गसे सेना सहित चला भी

था। किन्तु उसे ऐन समयपर वाजीरावने भ्राता चिमाणाजी अप्पा ने रोक लिया।

इस प्रकार उस ओर से निराश होनेपर निजामने अपने अन्तिमप्रयत्न स्वरूप एकबार जी खोलकर अपने दल-बल सहित पेशवापर आक्रामण किया। परन्तु महाराष्ट्रवाहिनी के साथ भयंकर तोपें और युद्धोपयोगी सामान मौजूद होने के कारण निज़ामकी वह चेष्टा वेकार हुई। पड़ावसे हटते ही महाराष्ट्रोंने टिड्डीदल की भाँति उनपर टूट कर उन्हें नेस्त-नाबूद कर डाला। निजाम अपनी जान बचाकर भूपाल दुर्गमें जा छिपे।

उनके दुर्गमें आश्रय ग्रहण करनेपर महाराष्ट्रोंने वहांभी गोले वर्साना आरम्भ किया। उस समय पेशवाके पास दुर्गको नष्ट-भ्रष्ट करने योग्य तोपें नहीं थीं तथापि निशाने बाज वीर सैनिकोंके विष-विजड़ित बाण और सन-सनाती हुई गोलियोंकी वर्षासे निज़ामको विवश होकर वह दुर्ग परित्याग करना पड़ा। अबतो वह प्राणोंकी बाजी लगाकर दुर्गके बाहर निकल आये और अपनी विकराल तोपों द्वारा महाराष्ट्रोंका नाश करने लगे। पेशवाने निज़ाम की वह तोपें बन्द करानेकी बहुतेरी चेष्टा की। पर व्यर्थ! उसमें उन्हे यश न मिला। अब तो वह भीषण रूपसे क्रुद्ध हो उठे और अपनी सारी शक्ति लगाकर युद्ध करने लगे।

२४ दिन तक यह युद्ध जारी रहा । अन्तमें निज़ाम की हार और पेशवा की विजय हुई ।

दक्षिण (हैदराबाद) के प्रबल-प्रतापी नवाब निज़ाम बहादुर सम्पूर्ण रूपसे पेशवा द्वारा दुर्दशाग्रस्त होकर उनसे क्षमा प्रार्थी हुए । महाराष्ट्रपतिसे सन्धि स्थापन करनेके लिये वाजीरावने उनके सम्मुख कई एक शर्तें पेश कीं । जिनका मुख्य आशय यह था:—

(१) सम्पूर्ण मालवा देश तथा नर्म्मदा और चम्बल नदीके मध्यका समस्त भूभाग, महाराष्ट्रोंके अधिकार में हो । इसकी व्यवस्था स्वयम् निज़ाम बादशाहसे कह-कर कर लें ।

(२) इस युद्धके दण्ड स्वरूप निज़ामको ५० लाख रुपये देने होंगे ।

निजामने पेशवाकी दोनों शर्तें सन् १७३८ ई० के ७ जनवरीके दिन स्वीकार कर लीं ।

वाजीरावने नासिरजंगकी गति रोकनेके लिये चिमणाजी आप्पाके पास जो पत्र लिखा था उसमें—"निजामकी हारपर आश्चर्य प्रकट करते हुए उन्हें "अपने वीर सर्दार दाभाड़े, भोसला, यादव, गायकवाड़ आदि वीरोंके साथ वापस लौट आनेकी बात लिखी थी । उस समय उनकी इच्छा समस्त महाराष्ट्र वीरोंको एकात्रित कर समस्त दक्षिण

भारतको मुगलोंसे मुक्त करने की थी। परन्तु व्यर्थ ! आपुसकी फूटके कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी !

वीर पेशवाने सन् १७३८ ई० की ८ जनवरीको चिमणाजी आप्पाके पास पुनः एक पत्र लिखा था। जिसमें निजाम की दारुण स्थितिका वर्णन करते हुए इस बातका चित्र-चित्रण किया था कि उन्होंने किस प्रकार की अनिच्छा से, केवल निर्ब्बलता परवश होकर पेशवासे सन्धि की थी।

इस युद्धमें कोटाके राजा दुर्जन साल तथा राजपुताने के प्रायः सभी राजाओंने निज़ाम महोदयका पक्ष अवलम्बन कर महाराष्ट्रोंसे युद्ध किया था। परन्तु वीर बाजीराव की विजय हुई देख दुर्जनसालने उनसे क्षमा मांग ली। राजा साहबका "नौहरगढ़" नामक किला उस समय मुगलों के अधिकारमें था। जिसे पेशवाने स्वयम् जीत कर दुर्जन सालके सुपुर्द किया। यह घटना सन् १७३८ ई० के मार्च महीनेमें आरम्भ हुई थी।

—❀❀❀❀◦✱—

१८

(बादशाह नादिरशाहका भारतमें आगमन)

परदेशियोंके आगमन कालके आरम्भमें दिल्लीमें जो राजनैतिक अराजकता उपन्न हुई थी उसके कारणभी पेशवा को अत्यन्त कष्ट सहने पड़े थे। वह ज्योंहीं कोंकण स्थित पोर्तुगीज़ लोगोंके दमन कार्यसे निवृत्त हुए त्योंही उन्हें पुनः एक भयंकर संवादने युद्धके लिये बाध्य किया।

वीर बाजीरावने सुना कि, नादिरशाह भारतमें पहुंच कर दिल्ली आदि लूटते, वहांके सम्राटोंको बन्दी बनाते, १ लाख सेना लेकर दक्षिण विजय के हेतु आगे बढ़े हैं। इस समाचारको सुनकर उनके बाहु स्फुरण करने लगे। उन्होंने बड़े उत्साहसे उस आततायी से टक्कर लेनेके हेतु सेना तैय्यार करते हुए नासिरजङ्गको सहायतार्थ पत्र लिखा। जिसमें लिख दिया—"घर की शत्रुतासे बाहर का शत्रु प्रबल

होता है। अतःआइये, इस समय एक हो जाँय। तत्पश्चात्,एक दूसरा पत्र अपने भाई चिमाजी अप्पा को लिखकर उन्हें अपने पास बुलवा लिया।

उपरोक्त पत्र भेजने के दो-तीन दिन पश्चात् उन्होंने एक पत्र अपने गुरु श्री ब्रह्मेन्द्र स्वामी को लिखा था। जिसमें उनके श्रीचरणोंके प्रति अपनी प्रगाढ़ निष्ठा जतलाते हुए, उन्हें नादिरशाहका आक्रमण, देशकी स्थिति इत्यादि विषय समझाते हुए उनकी राय पूछी थी।

इसके पश्चात् गुरुदेवने उन्हें जो पत्र लिखा था उसका उत्तर उन्होंने २४ मार्चके पत्रमें इस प्रकार दिया है:—

"गुरुदेव का कृपा पत्र प्राप्त कर अत्यन्त आनन्द हुआ इस समय नादिरशाहने दिल्लीपर पूर्णरूपसे अपना सिक्का जमा रखा है तथा वह हमें परास्त करनेके हेतु दक्षिण यात्रा के बिचार में है। इसके पूर्व्वही मैं चाहता हूं कि, हमारी सेना चम्बल नदी पारकर उसे मार्गहीमें रोके, ताकि, वह आगे न बढ़ सके। देखूँ, मेरे इस कार्यमें मुझे कहाँ तक सफलता मिलती है!"

—❀❀❀❀✱❀—

१६

(नादिर शाह का स्वदेश गमन)

—❀❀❀❀✱❀—
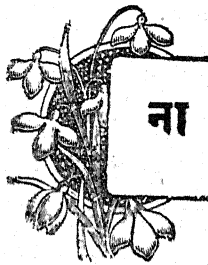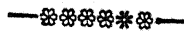
नादिर शाहने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। किन्तु यह समाचार कई दिन तक दिल्ली दर्बारमें नहीं पहुँचा था। यहाँ तक कि, नादिर शाहने सिन्धु नदी को पार कर पंजाब में प्रवेश किया तो भी दिल्लीवालोंको इसकी कोई खबर न रही। इसका कारण था, केवल पेशवाका वीरत्व और धाक। क्योंकि पेशवा के दमनकी आवश्यकता दिल्ली दर्बारको विशेष रूपसे अनुभूत हो रही थी। अतः सभी लोग उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये हुए थे। ऐसे समय नादिरशाहने बिना किसी बाधा के भारतमें प्रवेश कर दिल्ली को अपने आधीन कर लियो। वहाँ प्रायः ३१ करोड़ रुपयेकी सम्पत्ति उसने लूट ली थी तथा असंख्य नर हत्याएं की थी। सारे नगर की सड़कें रक्त से लाल हो रही थी।

वहाँको लूटमें उसे जो बहुमूल्य सामान मिले थे, उनमें से केवल बादशाही तख्त का मूल्य ८ करोड़ रुपया था। इतनी दौलत पाकर वह तृप्त हो गया। उसने दक्षिण भारत जीतने का विचार त्याग दिया और वह पेशवाके साथ बिनायुद्ध किये ही स्वदेश लौट गया।

१६
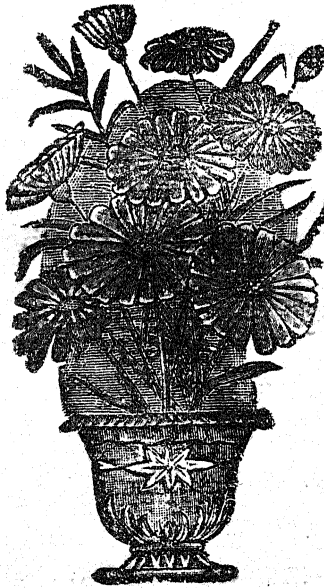
फिरंगियोंका अत्याचार।

वीर बाजीराव जिस समय पेशवा पद पर प्रतिष्ठित हुए थे उसी समय से पोर्तुगीज़ (फिरंगी) लोग महाराष्ट्रों के कट्टर शत्रु बन बैठे थे। उनकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थी और उन्होंने 'गोवा' दाबोला, दमण, दीऊ, साष्ट्री, मुसई आदि स्थानोंको अपने अधिकार में करलिया था। वहाँ अपना अधिकार जमाकर उन्होंने वहाँके समाजको त्रास देना एवम् जबर्दस्ती ईसाई धर्म में दीक्षित करना आरम्भ कर दिया था।

उन्होंने उस समय अपने धर्म-प्रचार कार्य के लिये संगठित रूपसे तत् स्थानीय-हिन्दु-मुसलमानों के प्रति जो अमानुषिक अत्याचार किये थे, वह हिन्स्र पशुको भी लज्जित

करने वाले थे। वृनादन मस्जिदें और मन्दिर गिरा दिये गये थे। तरह-तरहसे अधीनस्थ समाज को त्रास दे रखा था।

उस समय उनका अत्याचार इतना बढ़ा चढ़ा था कि, वह ग्राम में प्रवेश करके वहांके जमीदारों को लूट कर कंगाल बना डालते थे। निर्धन गरीब श्रमजीवीगणों को हठात पकड़ कर उनसे काम लेते और वेतन देने के बदले उन्हें पीटपाट कर अपने धर्म में मिलाने का प्रयत्न करते। जो लोग बिना मंजूरी लिये हुए समस्त दिवस परिश्रम करते उन बेचारों को भी सायंकाल को एक मुट्ठी अन्न के लिये तरसना पड़ता था। उनकी औरतें भ्रष्ट की जाती थीं। उनके इन असहनीय अत्याचारों से देश त्रस्त हो उठा। कितने ही लोग अपनी मातृभूमि का परित्याग कर महाराष्ट्र शासित देशों में जाकर रहने लगे थे। अन्त में बेहद अत्याचारों से पीड़ित होकर उन्होंने पेशवा की शरण ली। उनका आह्वान सुनकर वीरवर बाजीराव ने अपने बन्धु चिमाजी अप्पा को कोकण भेज दिया और पोर्तुगीजों की उस आसुरी. लीलाका समाचार महाराज शाहु को लिखभेजा। उनकी सम्मति लेकर वह भी पोर्तुगीजों को दण्ड देने के हेतु आगे बढ़े।

महाराष्ट्र बाहिनीके सेना नायक वीरवर आंग्रेने इसके पूर्व ही पुर्तगीज़ों को दमन करने में असमर्थ होकर महाराष्ट्र पति से सहायता की प्रार्थना की थी। अतः वह भी वीरवर पेशवा के साथ होगये। कुलाबाके निकट फिरंगियोंसे उनकी

मुठभेड़ आरम्भ हुई। वीरवर पेशवा ने अपने अमोघ पराक्रम द्वारा फिरंगियोंका गर्व्व-खर्व्व कर उन्हें अस्त-व्यस्त कर डाला और उनके गर्वित मस्तक पर अपनी विजय पताका गाड़ दी।

कुलाबाके विजय करने पर वीर पेशवाने "साष्ठी" और "वसई" नामक प्रदेशों पर धावा बोल दिया और सर्व्व प्रथम वसईके निकटस्थ "घोड़ा बन्दर" दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। तदनन्तर ठाणा नगरको भी पुर्त-गीज़ोंके हाथसे छीन लिया। इसके पश्चात वह फिरङ्गियों के 'बान्दरा' नामक सैनिक निवास स्थानको अपने आधीन कर लेने के हेतु आगे बढ़े।

पेशवाके वहाँ पर आक्रमण करतेही अंग्रेजोंने गुप्तरूप से पोर्तुगीजों की सहायता करनेका निश्चय किया। कारण पास ही 'गण' नामक स्थानमें उनकी कोठी होनेके कारण उन्हें उसके हाथसे निकल जानेका भय था।

इसी समय अकस्मात् उन्हें यह भयङ्कर समाचार मिला कि, दिल्लीमें मराठोंकी शक्ति कम करनेके लिये भयङ्कर षड्यन्त्र रचा जारहा है। इस समाचारको सुनतेही उन्होंने वान्दरा विजयका विचार छोड़ दियो और वह यवनोंको परास्त करनेके हेतु आगे बढ़े।

भूपाल के निकट पहुँच कर उन्होंने निज़ाम को पुनः एक बार अपने लम्बे भालेका मज़ा चखा दिया। अस्तु,

पेशवाके उत्तर भारतकी ओर अग्रसर होनेके पश्चात् चिमाजी अप्पाने फिरंगियोंके साथ पूरे दो वर्ष तक युद्ध करके तारापुरसाष्टी, माहिम आदि प्रदेशों पर महाराष्ट्रीय विजय पताका फहरा दी। इस महा संग्राममें अङ्गरेज और हवशी गण भी फिरंगियोंके सहायक थे। परन्तु फिर भी वह महाराष्ट्र वाहिनीको परास्त न कर सके।

इस युद्धमें अङ्गरेजोंकी सौ से अधिक बड़े-बड़े जहाजों में युद्ध सामग्री नष्ट हुई थीं और उनके कई प्रसिद्ध सेनापति गण परलोक चल बसे थे।

पश्चात् सन् १७३९ ई० में महाराष्ट्रोंने बसई पर आक्रमण किया। कोकण भरमें पुर्तगीज़ोंका केवल यही एक प्रधान किला था।

वीर चिमणाजी अप्पा तीन महीने तक उस दुर्गको आधीन करनेकी चेष्टा कर रहे थे। किन्तु कृतकार्य न होसके। फिरंगियोंने यूरप (इंगलैण्ड) से शिक्षित सैन्य लाकर दुर्गकी रक्षाकी थी। उनकी तोपोंके गोलोंके सम्मुख महाराष्ट्र सेनाका खड़ा रहना महा कठिन होगया था।

वीर चिमणाजी अप्पाने जब देखा कि किसी भी भाँति दुर्गको आधीन करना कठिन है तो उन्होंने सुरंग खोद कर बारुद द्वारा दुर्गको उड़ानेका प्रयत्न किया। वीर महाराष्ट्रोंके गोलन्दाजोंने तोपोंके गोले चला-चला कर दुर्गके दीवारमें एक

बड़ा छेद भी कर डाला था। परन्तु इतना सब कुछ करने धरने पर भी दुर्ग हस्तगत न होसका।

जब चिमणाजी अप्पाकी सेना बसई दुर्गको किसी भी भाँति जीत न सकी तब वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने सेनापतियोंको उद्देश्य कर बोले—"यदि ऐसाही है तो कृपया मुझे ही तोपके मुंह पर रख कर दुर्गमें पहुँचा दीजिये।"

चिमणाजी आप्पाके इस व्यङ्ग एवम् कर्णकटु वाक्यसे महाराष्ट्र सेनापति "भीषणरूपसे उत्तेजित हो उठे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगाकर शत्रुके दुर्ग पर धावा बोल दिया। इस बारके युद्धमें वीर महाराष्ट्रोंको पूरा यश प्राप्त हुआ और उन्होंने बसई दुर्गको लेही कर छोड़ा। बसई दुर्ग पर महाराष्ट्रोंका 'भगवा झण्डा' फहराने लगा। इस युद्धमें फिरंगियोंके सातसौ वीर मारे गये।

इस महासंग्राममें विदेशियोंको उक्त प्रदेशोंसे विताड़ित करनेमें 'दक्षिणियों' ने जो वीरता एवम् शूरता दिखाई वह सराहनीय है। उन्होंने केवल 'गोआ' प्रदेशको छोड़ कर समस्त प्रदेशोंको फिरंगियोंके हाथसे छीन लिया।

बसई दुर्ग पर महाराष्ट्रोंका अधिकार होनेके साथही साथ दुर्गेशके परिवारकी एक अत्यन्त सुन्दर नवयौवन तरुणी वीर चिमणाजी आप्पाके हाथ लगी। परन्तु धर्म प्राण चिमणा

जीने सम्मान पूर्वक उस महिलाको उसके आत्मीय लोगोंके पास भेज दिया। बसई निवासी ईसाईगण वीर चिमणाजी अप्पाकी इस सम्बन्धमें अब तक प्रशंसा करते हैं।

२०

दिल्लीकी अवस्था।
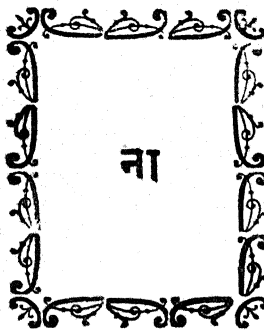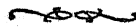
ना दिर शाहकी भयङ्कर डकैतीके कारण दिल्ली ऐसी श्रीहीन होगयी थी कि, यदि उस समय वीर पेशवा मुगलोंका आधिपत्य दिल्लीसे हटाना चाहते तो सहजही में हटा सकते थे। किन्तु उनके उदार महाराष्ट्र हृदयने विपत्ति मय स्थितिमें फँसे हुए बूढ़े बादशाहको बिना कारण त्रास देना उचित न समझा। वरन उल्टे उनके पास १०१ स्वर्ण मुद्रा उपहार स्वरूप भेज दी।

बादशाह सलामत बाजीरावके इस व्यवहारसे बड़े प्रसन्न हुए और बाजीरावकी उदारताकी मुक्त कण्ठसे प्रशन्सा करते हुएउन्हें सन् १७३६ ई० में एक रत्न जड़ित हार तथा जरीदारका पौशाक समर्पण किया था।

निजाम ने महाराष्ट्रों द्वारा पराजित होने पर भूपाल के

निकट पेशवासे जो सन्धि की थी, उसका पालन नहीं किया। बाजीरावका बादशाहसे साक्षात्कार होनेपर उन्होंने मालवा की 'सूबेदारी' के सम्बन्धमें कोई जिक्र नहीं छेड़ा और न उन्होंने मालवा प्रदेशके लिये कोई नवीन सूबेदारीही नियुक्त की। अतः पेशवाही मालवा प्रदेश की सूबेदारी देखने लगे।

२१

निजाम की नीचता।

—*****—
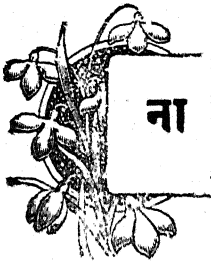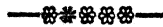
नादिरशाहका उन्माद उतारनेके लिये वीर पेशवाके जो सरदारगण दिल्लीश्वरकी सहायताके हेतु कोकणसे रवाना हुए थे, उनके पहुँचनेके पूर्वही नादिरशाह दिल्ली को लूटकर स्वदेश लौट गया। अतः इस यात्राको सफल बनाने के हेतु पेशवाने राजपुतानेके राजालोगोंके साथ मैत्री स्थापन करना निश्चय किया। अल्पकालमें ही उन्होंने राजपूतानेके समस्त राजाओंको महाराष्ट्रोंका मित्र बना लिया। उसी समय उन्होंने पुनः निजामके विरोधी होनेका संवाद सुना।

वीरवर बाजीरावने इस बार निजामका अस्तित्व समस्त दक्षिण भारतसे मिटा देनेका निश्चय किया और किसी सुअवसर का अनुसन्धान करने लगे।

—*****—

२२

निजामके साथ पुनः महाराष्ट्रों का युद्ध।
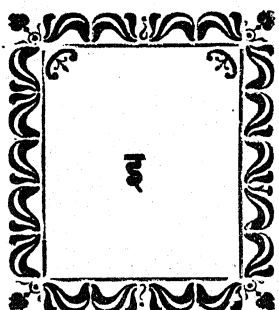
इस समय निजामुलमुलककी राज पताका उत्तर भारतमें फहरा रही थी। उनके पुत्रोंमें भ्रातृः विरोध आरम्भ हो चुका था। बस, इसी समय को उपयुक्त देख वीर पेशवाने निजामके पुत्र नासिर जंग पर आक्रमण किया। अवरंगाबादमें उभय सेनाओंमें गहरी मुठ भेड़ हो गयी। इस समाचारको सुनकर 'बेरार' देशसे असंख्य सेना नासिरजंग की सहायता के लिये पहुँची। इस सेनाके आनेसे नासिरजंगकी सेना बयालीस हज़ार हो गई। उसमें १९ हजार घुड़सवार योद्धा और २३ हज़ार पैदल सिपाही थे। इसके अतिरिक्त डेढ़सौ तोपखाने और तीनसौ लक्षभेदी (धनुर्बाण धारी) वीर भी उनके साथ थे।

इस सेना के पहुँचते ही महाराष्ट्रों की अल्प सेना देखकर नासिर जंग ने अकस्मात् चारों ओर से महाराष्ट्र वाहिनी पर

आक्रमण कर दिया। महाराष्ट्र वीर अल्पसंख्यामें होने पर भी शत्रु के सन्मुख वीरताके साथ डँटे रहे। किन्तु अधिक देर तक वह शत्रु के सेना समुद्रके सन्मुख दम साधे न रह सके। नासिर जंगने प्रबल रुपसे महाराष्ट्रों को रौंदना आरम्भ किया। किन्तु इसी समय अकस्मात् वीर विमणाजी अप्पा, वीरवर होलकर और राणोजी सेंधियाको लिये अपने दल-बल सहित पेशवकी सेनामें जा सम्मिलित हुए। पुनः एक बार घोर संग्राम छिड़ गया। अब तो महाराष्ट्रीय सेना मुसल्मानों को अच्छा हाथ दिखलाने लगी। थोड़ीही देरमें युद्धका रङ्ग पलट गया। यवन सेना भागने लगी। नासिरजङ्गने उसे रोकनेकी बहुत चेष्टाकी। परन्तु व्यर्थ शत्रुओं को भागते हुए देख महाराष्ट्रों ने उनका पीछा किया। शत्रु सेना पुनःमहाराष्ट्र वाहिनीके सम्मुख जम न सकी और भागकर जंगल पहाड़ोंमें घुस पड़ी। उसके खोजने और परास्त करने में महाराष्ट्रों को दो तीन मास तक जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़में भटकना पड़ा तथा साथही साथ अन्न-जलके लिए भी कष्ट उठाना पड़ा। अन्तमें वह एक दिन महाराष्ट्रोंके जबर्दस्त पञ्जेमें फँसही गयी। नासिरजङ्ग बुरी तरह अपमानित एवम् लज्जित हुआ।

—❀❀❀✽❀✽—

२३

नासिरजंग द्वारा सन्धिकी प्रार्थना

नासिरजंगने अपना पराजय स्वीकारकर बाजीरावके पास सन्धि प्रार्थना की। यद्यपि पेशवा की आन्तरिक इच्छा सन्धि करने की नहीं थी तथापि इस समरमें प्रजाको जो दुःख झेलना पड़ा था उसका ख्याल रखते हुए उन्हें उस समय विवष होकर सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि सन् १७४० के मार्च महिने में हुई थी।

उपरोक्त सन्धि में नासिरजंगने खारगौठा और "हिन्डिया" नामक दो मुगल प्रदेश महाराष्ट्रपतिको अर्पण किये। इस सन्धिके पश्चात् बाजीरावने अपना रूख उत्तर भारतकी ओर बदला और वीरवर चिमणाजी आप्पा कोंकण प्रदेश को लौट आये।

२४

ब्राह्मण वीर बाजीराव पेशवा की मृत्यु ।

उत्तर भारत की ओर अग्रसर होते समय बाजीरावका विचार "कटक" तक जाने का था । किन्तु बेचारे दुर्द्दवसे पार न पा सके । नर्मदा नदी तक पहुँचते ही वह रोगसे ग्रसित हुए और १७४० ई० की २८ अप्रैलको उन्होंने अपनी ४१ वर्ष की अवस्था में अकस्मात् स्वर्ग यात्रा की । उनकी मृत्यु का समाचार सारे देश में फैल गया । स्वयम् महाराष्ट्रपति इस शोक समाचारको सुन कर बेहोश हो गये । उनकी उस विरह व्यथा का चित्र-चित्रण भला यह क्षीण लेखनी कहां तक कर सकती है ?

बाजीरावकी मृत्युने केवल महाराष्ट्र मण्डलहीमें नहीं, वरन समस्त हिन्दू राजे-रजवाड़े शूर-सामन्त सैनिक तथा

नागरिकोंमें भीषण हाहाकार मचा दिया था। ऐसा कोई हिन्दू राजा एवम् वीर नहीं था, जिसने उनके लिये दो आंसू न टपकाये हो। उनके परिवारका पूछना ही क्या था। पाठक इसका अनुमान स्वयम् करलें।
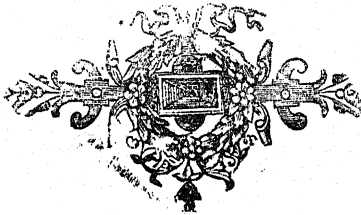
२५

उपसंहार ।

जीरावने पेशवा पदपर प्रतिष्ठित होकर २० वर्ष जननी जन्मभूमिकी सेवा की । उनके जीवनका अधिकांश समय युद्ध व्यापारमें ही व्यतीत हुआ था । उनके ऐसा दूरदर्शी और प्रचण्ड पराक्रमी पुरुष बहुतही विरला होता है । वह अपूर्व महत्वाकांक्षी सरल और दयालु पुरुष थे । शत्रु की दया याचना पर वह सदा क्षमा कर दिया करते थे ।।

इसी दयालुताके कारणही उन्हे वार-वार त्रास उठाना पड़ा था । किन्तु उन्होंने कभी भी उसकी चिन्ता नहीं की । अस्तु,

जिस प्रकार छत्रपति शिवाजीको श्री समर्थ रामदाससे मन्त्रणा मिला करती थी उसी प्रकार बाजीरावको श्रीब्रम्हेन्द्र स्वामीसे मिला करती थी । इसी सत्पुरुषके उपदेशोंके कारणही

वीरवर बाजीरावको अखिल भारतका सार्व्वभौमत्व प्राप्त हो गया था। उपरोक्त महापुरुषका जन्म ई०१६४९ में बरार देशमें हुआ था। आपका बचपनका नाम 'विष्णुपन्त' था। जिस किसी पुरुषको भगवान अपनी सेवामें लेना चाहता है उस पुरुषके उत्पन्न होतेही वैसी व्यवस्था आरम्भ होजाती है। जिस समय विष्णुपन्त १२ वर्ष के थे, वैराग्य प्रथम सीढ़ी उनके सामने उपस्थित हुई उनके माता पिताका देहान्त होगया। १५वर्षकी अवस्थामें उन्होंने काशी क्षेत्रमें जाकर वेदान्तका अध्ययन किया और वहांके परम ज्ञानी महात्मा "ज्ञानेन्द्र सरस्वती" से ब्रह्म विद्या प्राप्त की। गुरु "ज्ञानेन्द्र सरस्वती" विष्णुपन्त जैसे परीश्रमी सच्चे शिष्यको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णुपन्तको ब्रह्मेन्द्र स्वामीके नामसे विख्यात किया।

"ज्ञानेन्द्र सरस्वती" गुरुमहाराजसे ब्रह्मविद्या प्राप्त करके उनकी आज्ञासे स्वदेशका कार्य आरम्भ करने को चले। प्रथम उन्होंने समस्त तीर्थोंका दर्शन किया। तदनन्तर १६६८ ई० में कोंकण में चले गये। वहां चिपलुण के निकट 'परशुराम' क्षेत्रमें १२ वर्ष तक उन्होंने कठोर तपस्या की। और एक मठभी स्थापित किया। मठकी स्थापनाके पश्चात् वह धर्मोपदेश के साथसाथ वहांके नागरिकोंको 'स्वराज्य का उपदेश देने लगे। कोंकण निवासी समस्त धनी गरीब लोग उनके निकट पहुंचे। बस, यही से स्वामीजी राजनीतिक क्षेत्रमें कूदे।

बालाजी विश्वनाथ पन्तके मरनेपर वह महाराष्ट्र राजधानी सितारामें जा पहुंचे। बालाजी तथा उनके कुटुम्बियोंपर स्वामीजीकी विशेष कृपा दृष्टि थी। स्वामीजी ने अनेकों वार बालाजी तथा उनके पुत्र बाजीरावकी विपन्नावस्थामें धनादि से सहायताकी थी। बालाजीके स्वर्गवासके पश्चात् बाजीराव के आधार स्तम्भ एकमात्र स्वामीजी ही थे। जब कभी बाजीरावके सम्मुख कोई भीषण समस्या आ उपस्थित होती थी वह स्वामीजी का आश्रय ग्रहण करते और स्वामीजी उसका निवारण कर देते थे। अस्तु! बाजीरावकी मृत्युके पश्चात् उन्होंने अनशन व्रत आरम्भ किया और उसीमें वह ई० सन् १७४१ के आरम्भमें इस लोकसे विमुख हो गये। बस, पाठकगण! यहीं पर इनदो स्वातन्त्र्य वीरोंकी जीवनी समाप्त होजाती है।

महादेव प्रसाद, द्वारा—अर्जुन प्रेस, कबीर चौरा, काशी।

बुन्देलखण्ड केशरी
वीर छत्रसाल